विपात्र

गजानन माधव मुक्तिबोध

विपात्र

लंबे-लंबे पत्तोंवाली घनी बड़ी इलायची की झाड़ी के पास जब हम खड़े हो गए तो पीछे से हँसी का ठहाका सुनाई दिया। हमने परवाह नहीं की, यद्यपि उस हँसी में एक हल्का

उपहास भी था। हम बड़ी इलायची के सफेद-पीले, कुछ लंबे पंखुरियोंवाले फूलों को मुग्ध हो कर देखते रहे। मैंने एक पंखुरी तोड़ी और मुँह में डाल ली। उसमें बड़ी इलायची का स्वाद था। मैं खुश हो गया। बड़ी इलायची की झाड़ी की पाँत में हींग की घनी-हरी झाड़ी भी थी और उसके आगे, उसी पाँत में, पारिजात खिल रहा था। मेरा साथी, बड़ी ही गंभीरता से प्रत्येक पेड़ के बौटे निकाल नाम समझाता जा रहा था। लेकिन मेरा दिमाग अपनी मस्ती में कहीं और भटक रहा था।

सभी तरफ हरियाला अँधेरा और हरियाला उजाला छाया हुआ था और बीच-बीच में सुनहली चादरें बिछी हुई थीं। अजीब लहरें मेरे मन में दौड़ रही थीं।

मैं अपने साथी को पीछे छोड़ते हुए, एक क्यारी पार कर, कटहल के पेड़ की छाया के नीचे आ गया और मुग्ध भाव से उसके उभरे रेशेवाले पत्तों पर हाथ फेरने लगा।

उधर कुछ लोग, सीधे-सीधे ऊँचे-उठे बूढ़े छरहरे बादाम के पेड़ के नीचे गिरे हुए कच्चे बादामों को हाथ से उठा-उठा कर टटोलते जा रहे थे। मैंने उनकी ओर देखा और मुँह फेर लिया। जेब में से दियासलाई निकाल कर बीड़ी सुलगाई, उनके बारे में सोचने ही वाला था, इतने में मुझे दूर से एक मोटे सज्जन आते दिखाई दिए। उनके हाथ में फूलों के कई गुच्छे थे - वे विलायती फूल थे, अलग डिजाइनों के, अलग रूप-रंग के, - गुजराती स्त्रियों की सादी किंतु साफ-सफेद साड़ियों की किनारियों की याद दिलाते थे। जाने क्यों मुझे लगा कि वे फूल उनके हाथों में शोभा नहीं देते क्योंकि वे हाथ उन फूलों के योग्य नहीं हैं।

मैंने अपनी परीक्षा करनी चाही। आखिर मैं उनके बारे में ऐसा क्यों सोचता हूँ? एक खयाल तैर आया कि वे सज्जन किसी दूसरे की, किसी दूसरे बड़े की हूबहू नकल कर रहे हैं इसलिए कि उन्होंने अपने जाने-अनजाने किसी बड़े आदमी के रास्ते पर चलना मंजूर किया है। उनके हाथ में फूल इसलिए नहीं हैं कि उन्हें वे प्यारे हैं बल्कि इसलिए कि उनका आराध्य व्यक्ति बागवानी का शौकीन है और दूर अहाते के पास कहीं वह खुद भी फूलों को डंठलों-सहित चुन रहा है।

वे सज्जन मेरे पास आ जाते हैं। मुझे फूलों का एक गुच्छा देते हैं, कहते हैं, 'कितना खूबसूरत है।'

मैं उनके चेहरे की तरफ देखता रह जाता हूँ। तानपूरे पर गानेवाली किसी नौजवान शास्त्रीय संगीतकार की मुझे याद आ जाती है। हाँ, वैसा ही उसका रियाज है। लेकिन, काहे का? आराध्य की उपासना का!

अपने खयाल पर मैं मुस्करा उठता हूँ और उनके कंधे पर हाथ रख कर कहता हूँ, 'यार, इन फूलों में मजा नहीं आता। एक कप चाय पिलवाओ।'

चाय की बात सुन कर वे ठठा कर हँस पड़ते हैं। बहुत सरगरमी से, और प्यार भर कर वे अपने सफेद-झक कुरते में से एक रुपए का नोट निकाल कर मुझे दे देते हैं, 'जाइए सिंग साहब के साथ। पी आइए।'

मैं खुशी से उछल पड़ता हूँ। वे आगे बढ़ जाते हैं। मैं पीछे से चिल्ला कर कहता हूँ, 'राव साहब की जय हो!'

मैं सोचता हूँ कि मेरी आवाज बगीचे में दूर-दूर तक जाएगी। लेकिन लोग अपने में डूबे हुए थे। सिर्फ सिंग साहब हींग की झाड़ी का एक पत्ता मुझे ला कर दे रहा था।

मैंने कहा, 'सिंग साहब, तुम्हारा हेमिंग्वे मर गया!'

वह स्तब्ध हो गया। वह कुछ नहीं कह सका। उसने सिर्फ इतना ही पूछा, 'कहाँ पढ़ा? कब मरा?

मैंने उसे हेमिंग्वे की मृत्यु की पूरी परिस्थिति समझाई। समझाते-समझाते मुझे भी दु:ख होने लगा। मैंने कहा, 'यह जान-बूझ कर उसने किया।'

जगतसिंह ने, जिसे हम सिंग साहब कहते थे, पूछा, 'बंदूक उसने खुद अपने आप पर चला ली?'

मैंने कहा, 'नहीं, वह चल गई और फट पड़ी। मृत्यु आकस्मिक हुई।'

जगतसिंह ने कहा, 'अजीब बात है।'

मैं आगे चलने लगा। मेरे मुँह से बात झरने लगी - हेमिंग्वे कई दिनों से चुप और उदास था, संभव है, अपनी आत्महत्या के बारे में सोचता रहा हो, यद्यपि उसकी मृत्यु हुई आकस्मिक कारणों से ही।

मेर सामने एक लेखक-कलाकार की संवेदनाओं के, उसके जीवन के स्वकल्पित चित्र तैरते जा रहे थे। इतने में मैंने देखा कि बगीचे के अहाते के पश्चिमी छोर पर खड़े हुए टूटे फव्वारे के पास वाली क्यारी के पास से राव साहब गुजर रहे हैं। उनकी सफेद धोती शरद के आतप में झलमला रही है... कि इतने में वहाँ से घबराई हुई लेकिन संयमित आवाज आती है, 'साँप, साँप!'

मैं और जगतसिंह ठिठक जाते हैं। मुझे लगता है कि जैसे अपशकुन हुआ हो। सब लोग एक उत्तेजना में उधर निकल पड़ते हैं। आम के पेड़ों के जमघट में खड़े एक बूढ़े युकलिप्टस के पेड़ की ओट में हाथ-भर का मोटा साँप लहराता हुआ भागा जा रहा है।

मैं स्तब्ध रह गया। क्या मस्त लहराती हुई चाल है! बिलकुल काला लेकिन साँवली पीली डिजायनोंवाला। नौजवान माली हाथ में डंडा ले कर खड़ा था। उस पर वार नहीं कर रहा था। सबने कहा, 'मारो, मारो।' लेकिन वह खड़ा रहा।

'मैं नहीं मारूँगा साहब! यह यहाँ का देवता है।'

इतने में हमारे बीच खड़े हुए एक नौजवान ने उसके हाथ से डंडा छीन लिया। लेकिन तब तक वह साँप झाड़ियों में गायब हो चुका था।

एक विफलता और प्रतिक्रिया-हीनता का भाव हम सबमें छा गया। साँप के किस्से चलने लगे। वह क्रेट था, या कोब्रा! वह पनियल साँप था या अजगर! हमारे यहाँ का जुआलॉजिस्ट ज्यादा नहीं जानता था। लेकिन हमारे डायरेक्टर साहब लगातार बताते जा रहे थे। आश्चर्य की बात है कि साँप सर्दी के मौसम में लिकला। ज्यादातर वे बरसात या गरमी के मौसम में निकलते हैं। मैं और जगतसिंह उस भीड़ से हट गए और क्यारियों के बीच बनी हुई पगडंडियों पर चलने लगे। मैंने जगतसिंह से कहा, 'सब लोग बातों में लगे हैं। जल्दी निकल चलो; नहीं तो वे जाने नहीं देंगे।'

हमको मालूम नहीं था कि हमारे पीछे, जरा दूरी पर, राव साहब चल रहे हैं। उन्होंने वहीं से कहा, 'जल्दी निकल जाओ नहीं तो लोग अटका देंगे।' यह कह कर वे हँस पड़े। उनकी हँसी में भी हमने हल्के से व्यंग्य की गूँज सुनी।

अब वे हमारे बराबर-बराबर आए और कहने लगे, 'साँप के बारे में तो सब लोग बात कर रहे हैं। कोई मुझसे नहीं पूछता कि आखिर मैंने उसे देखा कैसे, वह कैसे निकला, कैसे भागा!' यह कह कर वे अपने पर ही हँसने लगे।

मैंने कहा, 'शायद माली ने उसे पहले-पहल देखा था। क्या यह सच है कि नाग यहाँ की रखवाली करता है?'

'कहते हैं कि इस बगीचे में कहीं धन गड़ा हुआ है और आज के मालिक के परदादे की आत्मा नाग बन कर उस धन की रखवाली करने यहाँ घूमा करती है। इसलिए माली ने उसे मारा नहीं।'

जगत ने कहा, 'अजीब अंधविश्वास है!'

इस बीच हम गुलाब की फूलों-लदी बेल से छाए हुए कुंज-द्वार से निकल कर, लुकाट के पेड़ के पास आ गए। उधर, अमरक का घना पेड़ खड़ा हुआ था। बगीचा सचमुच महक रहा था। फूलों से लदा था। बहार में आया था। एक आम के नीचे डायरेक्टर साहब के आस-पास बहुत-से लोग खड़े हुए थे जिनके सिर पर आम की डालियाँ छाया कर रही थीं। सब ओर रोमांटिक वातावरण छाया हुआ था।

मैंने अपने-आपसे कहा, 'क्या फूल-पेड़ महक रहे हैं! बगीचा लहक उठा है।'

बीच में ही राव साहब बोल पड़े, 'कुत्ते मार कर डाले हैं पेड़ों की जड़ों में।'

मैं विस्मित हो उठा। जगत स्तब्ध हो गया।

मेरे मुँह से सिर्फ इतना फूट पड़ा, 'ऐसा!'

लेकिन जगत ने कहा, 'नाग को छोड़ देते हो और कुत्तों को मार डालते हो।'

राव साहब ने हँसते हुए कहा, 'कुत्ते जनता हैं। नाग देवता है, अधिकारी हैं।' यह कह कर राव साहब ने मुझे देखा। लेकिन मेरा मुँह पीला पड़ चुका था। असल में उस आशय के मेरे शब्द थे जिसका प्रयोग किसी दिन मैंने किया था। उनका संदर्भ नहीं समझ सका।

मैं तेजी से कदम बढ़ा कर फाटक की ओर जाने लगा। मैंने जगत से कहा, 'एक बार मुझे 'बॉस' पर गुस्सा आ गया था। शायद तुम भी थे उस वक्त! जब दरबार बरखास्त हुआ तब बॉस की आलोचना करते हुए मैंने कहा कि ये लोग जनता को कुत्ता समझते हैं। राव साहब मेरे उस वाक्य की ओर इशारा कर रहे थे।'

जगत मेरे दु:ख को समझ नहीं सका। लेकिन मेरे रुख को और बॉस के रुख को, बहुतों-से मामलों में जैसा कि दिखाई दिया करता था, खूब समझता था। उसने सिर्फ कहा, 'राव साहब से बच कर रहना। वह कहीं तुम्हें गड्ढे में न गिरा दें।'

जगत के मन में राव साहब के संबंध में जो गुत्थी थी, उसे मैं खूब समझता था। दोनों आदमी दुनिया के दो सिरों पर खड़े हो कर एक-दूसरे को टोकते नजर आ रहे थे। दोनों एक-दूसरे को अगर बुरा नहीं तो सिरफिरा जरूर समझते थे। अगर मन-ही-मन दी जाने वाली गालियों की छानबीन की जाए तो पता चलेगा कि राव साहब जगत को आधा पागल या दिमागी फितूर रखनेवाला खब्ती जरूर समझते थे। इसकी एवज में

जगत राव साहब को कुंजी रट-रट कर एम.ए. पास करनेवाला कोई गँवार मिडिलची मानता था। राव साहब जगत के हेमिंग्वे, फॉकनर और फर्राटेदार अंग्रेजी को अच्छी नजरों से नहीं देखता था और उधर जगत राव साहब की गंभीरता, अनुशासनप्रियता, श्रम करने की अपूर्व शक्ति और धैर्य के सामने पराजित हो गया था। राव साहब जब देखते कि विभिन्न नगरों से हर माह आनेवाले पुस्तकों के बंडल को उठाते वक्त जगत का चेहरा बाग-बाग हो रहा है तो वे खुद अपने ऑफिस की टेबल से उठ कर दो गिल्लौरियाँ मुँह में डालते हुए इस तरह मुस्करा उठते मानो उन्होंने किसी बेवकूफ को कृपापूर्वक क्षमा कर दिया है। तब वे व्यंग्य-स्मित द्वारा अपने हृदय का समाधान कर लिया करते। और जब 'स्पैन' या 'न्यूजवीक' के अंक जगत के नाम से आते तो वे केवल इस अप्रिय तथ्य को अपने लिए मूल्यहीन समझ उन्हें अपने टेबल के दूसरी ओर फेंक देते। यह नहीं कि उन्हें अमेरिका से किसी भी प्रकार की कोई दुश्मनी थी, वरन यह कि वे इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि 'नेस्फील्ड ग्रामर' और 'मेयर ऑव कैस्टरब्रिज' से आगे कोई और भी चीज हो सकती है।

ज्ञान उनके लेखे जब मोक्ष का साधन नहीं है, मुक्ति का सोपान नहीं है तो नि:संदेह वह किसी भौतिक लक्ष्य की पूर्ति का एक साधन है - उसी प्रकार जैसे लकड़ी के कुत्ते को मार भगाया जा सकता है, या सँड़सी से जलती सिगड़ी पर से तवा नीचे उतारा जा सकता है। संक्षेप में, जो व्यक्ति ज्ञान की उपलब्धि का सौभाग्य प्राप्त करके भी यदि अपने जीवन में असफल रहा आया, अर्थात कीर्ति, प्रतिष्ठा और ऊँचा पद न प्राप्त कर सका तो उस व्यक्ति को सिरफिरा या दिमागी फितूरवाला नहीं तो और क्या कहा जाएगा। अधिक से अधिक वह तिरस्करणीय और कम से कम वह दयनीय है - उपेक्षणीय भले ही न हो।

राव साहब इस वक्त जिस सीढ़ी का नक्शा बराबर ध्यान में रखते थे। उस अगली सीढ़ी पर चढ़ने की तरकीबें भी जानते थे और फिर अपना मुँह हमेशा उसी तरफ रखते। वह सिर्फ मौजूदा जरूरत के लायक पढ़ लिया करते। सामाजिक वार्तालाप में पिछड़ जाने के भय से विजय प्राप्त करने के लिए, वे दो-चार अखबार भी रोज देख लिया करते।

वे चुप रहते, खूब मेहनत करते। महाकाव्य के धीरोदात्त नायक की भाँति ही वे धर्म, बुद्धि, कर्तव्यपरायणता और दयाशीलता की सुशिल्पित मूर्ति थे। लेकिन, काम पड़ने पर, अवसर के अनुसार पवित्र नियमों से इधर-उधर हट कर अपना मतलब भी साध लेते।

इसलिए उनके लेखे जगत मूर्ख था। वह खूब पढ़ता। अकेले अँधेरे में पड़ा रहता। बाहर कम निकलता। बाहर की दुनिया में वह अजनबीपन महसूस करता। मानसिक रूप से वह कैलिफोर्निया या हॉवर्ड यूनिवर्सिटियों के इलाकों में घूमता। अमरीकी साहित्य में वह सचमुच रम चुका था, उसी तरह जैसे शक्कर में गुलाब की पंखुरियाँ, जिनसे गुलकंद बनता है। यह कोई गलत बात नहीं थी। काल सैंडबर्ग इत्यादि प्रसिद्ध लेखकों के साहित्य ने उसे जीवन-स्वप्न प्रदान किए थे। वह एक भावुक स्वप्नशील व्यक्ति की भाँति उन बातों के अनुसार आचरण और जीवन बनाता जाता था; किंतु वह भूल जाता था कि उन बातों में, जो साहित्य में प्रकट हुईं, उनके कर्ताओं को कुछ नहीं दिया। जिसने दिया, वह थी उनकी रचना, न कि उस रचना का सत्य। जगत विद्वान था, लेकिन लेखक नहीं था। सिर्फ सच्चाई आदमी को कुछ नहीं दे पाती, सच्चाई को सामने लाने के लिए भी जोर और ताकत की जरूरत होती है। ऐसी सच्चाई जो आदमी में जोर पैदा नहीं कर पाती, वह सिर्फ जानकारी बन कर रह जाती है। जगत को सच्चाई सिर्फ सपना दे जाती थी और लेखक न होने के कारण तथा कार्यकर्ता न होने के कारण या क्रियाशक्ति न होने के कारण, वह उन सपनों में डूब कर नि:संग अंतर्मुख जीवन व्यतीत करता था। कम से कम आज तो जगत की यही हालत हैं यह हो सकता है कि चंद रोज बाद वह सुधर जाय जिसकी कि पूरी संभावना है।

उसके इस एकांतप्रिय जीवन से हमारे यहाँ कोई खुश नहीं था। लोग समझते हैं, कि वह बन रहा है कि अपने को दूसरों से बड़ा समझने की उसकी आदत है, कि हम सब देहाती हैं और वह खास हॉवर्ड या ऑक्सफोर्ड से डॉक्टरेट ले कर यहाँ चला आया है। पहले-पहले लोग उसकी स्वच्छ, अस्खलित, अंग्रेजी भाषा-प्रवाह से दबते और घबराते। किंतु बाकी के लोग जो खुद बड़ी डिग्रीवाले थे, उसकी अंग्रेजी के कारण उसे तावबाज या देश-काल स्थिति को ध्यान में न रख कर बात करनेवाला बेवकूफ समझते। कुछ लोग, जैसे राव साहब, अभी भी आशंकित ही रहते। अगर वह सचमुच अमेरिका से ऊँची डिग्री ले कर लौट आता तो संभव है लोग उसके रोब में रहते; लेकिन वह तो जा ही नहीं पा रहा था। उसके सामने अमेरिका जाने की थाली भी परसी गई थी, लेकिन अपने माता-पिता (जो धनी तो थे, किंतु थे बहुत अव्यावहारिक) के कहने से और (उसका दुर्भाग्यपूर्ण विवाह भी हो चुका था) अन्य कई झमेलों के आड़े आने से वह नहीं जा सका था। वह गरीब नहीं था। ऑक्सफोर्ड या हॉवर्ड खुद अपने पैसों से जा सकता था। वह वहाँ जाने और बस जाने की इच्छा करता था; किंतु उस इच्छा की पूर्ति के पूर्व घर के झमेलों से निपटने की कला उसके पास नहीं थी। असल में वह बच्चा था, जिंदगी का उसके पास तजुर्बा नहीं था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि रूढ़िवादी घराने में विवाहित होने के झमेलों की एक लंबी दास्तान ने उसकी जिंदगी का रस निचोड़ लिया

था। इस प्रकार अपनी नौजवानी में ही उसके चेहरे पर असफलता की राख और विरक्ति की धूल का लेप लगा हुआ था। किंतु इसके विपरीत वह मानसिक लीला में डूबा रहता... सैन्फ्रान्सिसको के किसी कॉलेज में वॉल्ट ह्विटमैन पर भाषण दे रहा है। सारे हाल में श्रोताओं के झुंड-ही-झुंड दिखाई देते हैं। उनमें एक संवेदनशील, स्वप्नशील लड़की भी जो किसी दूसरी या तीसरी बेंच पर बैठी है, वह उसकी ओर खिंच रही है। भाषण समाप्त। परिचय। वैचारिक आदान-प्रदान, फिर 'ब्लू मेन' रेस्तराँ। दोनों एक-दूसरे की सूरत देखना चाहते हैं। आँखे चुरा कर वह वहाँ भारत के संबंध में पूछती है। वह झेंपते हुए, और बाद में खुल कर, अपना ज्ञान पहले प्रदर्शित और फिर समर्पित करता है। दोनों का प्रेम हो जाता है। वे विवाहित होते हैं। दोनों अध्यापक हैं अथवा इनमें से कोई एक पत्रकार है। वे सरल, स्वच्छंद, उत्साहपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। फिर वह अपनी स्त्री को भारत लाता है। उसका नाम रख लीजिए - इरीना। इरीना और वह दोनों ताजी-ताजी हवा खाते हुए मद्रास जाते हैं। वहाँ से ट्रेन पकड़ कर वे कोडाईकानाल पहुँच जाते हैं। अहाता, दरवाजा, घर कमरा, साँवला सूनापना! दो आकृतियाँ। माता-पिता। दोनों आगंतुक आँसू बरसाते हुए उनके पैर छूते हैं... स्वप्न टूट जाता है और जगत के मन में अचानक सवाल पैदा होता है कि इरीना उसके माता-पिता के पैर छुएगी कि नहीं!

राव साहब इन सब बातों को नहीं जानते हैं। अगर जगत अपनी विशाल ज्ञान-राशि के द्वारा कोई ठोस और बड़ी चीज हासिल करता जिससे उसे चारों ओर सम्मान और ऊँची स्थिति तथा धन प्राप्त होता तो वे नि:संदेह उसकी सफलता पर श्रद्धांजलि चढ़ाते। लेकिन जिंदगी में ऊँची सीढ़ी प्राप्त न करने के कारण, उससे जुड़े हुए दूसरे कारणों से मनुष्य की जो एक दुर्दशाग्रस्त स्थिति प्राप्त होती है, वह उसकी कमजोर नस है। सभ्यता और शील के कारण अपने व्यक्तित्व के झूठे प्रतिबिंब गिराते हुए लोग उसे दुर्दशाग्रस्त स्थिति से सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। राव साहब छोटे पद से बड़े पद पर पहुँच चुके थे। किंतु उनकी प्रगति में निर्णायक योग उनकी प्रतिभा का नहीं था वरन उन संयोगों का था जो परिस्थितियों के बनते और बढ़ते हुए ताने-बानों के अनुकूल परिणाम के रूप में प्रस्तुत हो जाते हैं।

मेरे व्यक्तिगत इतिहास का यह एक सबसे विचित्र रहस्य है कि मुझे अपने जीवन में ऐसे ही लोग प्राप्त हुए जो किसी-न-किसी प्रकार से आहत थे। इन आहतों को पहचानने में मुझे तकलीफ होती। आहतों का भी अपना एक अहंकार होता जिसे मैं खूब पहचानता था और वह अहंकार बहुत दृढ़ होता है। वह उस मुंड-हीन कबंध के समान है, जो पराजय के बावजूद रणक्षेत्र में खून के फव्वारे छोड़ते हुए लड़ता रहता है।

उसमें मात्र आवेग और गति होती है जो कि सिर न होने के सबब शून्य में चारों ओर तलवार चलाता रहता है। क्या जगत वैसा है? मेरे ख्याल से वह ऐसा हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है।

दूसरी ओर, राव साहब किसी विश्वविख्यात, विश्वपूजित स्तूप के चपटे तल पर, हाँ, किसी प्राचीन गौरव-स्तूप पर, कोई चाय-पार्टी जमा रहे थे - अभिमान सहित, शालीनतापूर्वक, नम्रता और गौरव के साथ। लोगों का अभिवादन करते हुए वह एक-एक टुकड़ा और सैंडविच खाने का अनुरोध कर रहे हैं। उनके गदबदे और पृथुल शरीर के श्यामल मुखमंडल पर प्राचीन गौरव की सम्मानपूर्ण आभा के साथ ही स्वयं के प्रति गहरा संतोष व्यक्त हो रहा था।

मैं इन दोनों को इसी रूप में अपनी आँखों के सामने पाता हूँ। जगत नि:संदेह बेवकूफ था। लेकिन वह इसलिए बेवकूफ नहीं था कि उसके पास यूरोपीय साहित्य का ज्ञान था। यह सच है कि न हम, न हमारा शहर, न हमारा प्रांत, उसके ज्ञान का उपयोग कर पाता था, न उसका मूल्य समझता था। लेकिन इसमें जगत का स्वयं का दोष नहीं था। यदि वह ऐसा ज्ञान रखता है और उस ज्ञान में रमा रहता है जिसका हम मूल्य नहीं समझते या जिसे प्राप्त करने की हममें इच्छा नहीं है तो हमारे लेखे वह ज्ञान निरर्थक है, उसी से निर्मित और विकसित व्यक्तित्व को हम यदि आदर प्रदान न करें, उपेक्षा ही करें, मगर उस पर दया तो न करें। सच बात तो यह है कि उनके लेखे जगत की बड़ी भूल यह थी कि वह उनके समान नहीं था, उनके ढाँचे में जमता नहीं था और ऐसे निरर्थक ज्ञान में व्यर्थ ही डूबा रहता था जिससे फिजूल ही वक्त बरबाद होता, ऊँचा ओहदा न मिल पाता और उनके लेखे जिंदगी अकारथ हो कर बरबाद हो जाती।

जगत बेवकूफ इसलिए था कि यद्यपि वह कैरियर नहीं बना सकता था **(**थाली में परसे लड्डू को उठाने की भाँति भले ही वह ऑक्सफोर्ड या हॉवर्ड से डिग्री ले आए**)** लेकिन उसके बारे में सोचा करता था। उसमें सामाजिक क्षेत्र में घुसने और पैठने की शक्ति बिल्कुल नहीं थी। उसे विभिन्न प्रकार के, विभिन्न स्वभाव और विभिन्न व्यक्तिगत इतिहास रखनेवाले लोगों का अनुभव नहीं था। वह अभी बच्चा ही था। उसकी उम्र तेईस-चौबीस साल की थी। उसके दिल और दिमाग का चमड़ा अभी मजबूत नहीं था। वह अभी मनुष्यता का सहज विश्वास कर जाता था और उसे मालूम ही नहीं हो पाता था कि आखिर लोग उस पर क्यों हँस रहे हैं!

जगत में बड़ी-बड़ी खामियाँ थीं जिनमें से एक यह थी कि उसके अंत:करण में नफीस लेकिन सादे और कीमती पोशाक पहनने वाले उन गंभीर मुद्राओं के प्रोफेसरों और

अध्यापकों की कॉलर में उच्चतर ज्ञान के हीरे-मोती लगे हुए थे जो युनिवर्सिटी और कॉलेजों की बड़ी बिल्डिंगों के कॉरिडरों और कमरों में घूमते रहते हैं। यह बिल्कुल सही है कि हमारे यहाँ धन वह सुविधा उत्पन्न करता है जिसके आधार पर लोग ऊँचा ज्ञान प्राप्त करते हैं और बड़ी सफाई के साथ ऊँची बातचीत करते हैं। लेकिन ज्ञान के आलोक को धन के आलोक में मिला करके और फिर ज्ञान की उद्दीप्त मनोमूर्ति खड़ी करके देखने से अपनी बौनी परिस्थितियों से और उन परिस्थितियों से घूमनेवाले लोगों से अजीब फासले पैदा हो जाते हैं।

जगत अपने बचपन में ईसाई कॉनवेंट स्कूलों में पढ़ा था। इसीलिए उसकी अंगरेजी बड़ी सरल और स्वाभाविक हो गई थी। उसने ईसाइयत के उत्तमोत्तम नैतिक गुणों को आत्मसात करना चाहा था और साथ ही उन्हें अपने निज की भारतीय संस्कृति से मिला लिया था। 'सर्मन ऑफ द माउंट' से ले कर 'पृथ्वी सूक्त' तक में वह रस लेता था।

जगत बेवकूफ इसलिए भी था कि अमरीकी जनता की महान उपलब्धियों को अमरीकी सरकार और उसकी विदेश-नीति से मिला कर देखता। परिणामत:, जब डलेस कोई गलती करता या ऑइजनहॉवर कुछ गड़बड़ कर जाता तो उसे अपार दु:ख होता! उसके पास कोई राजनीतिक दृष्टिकोण नहीं था और उस अभाव के रिक्त स्थान पर अमरीका या यूरोप तथा भारत के भयानक दक्षिणपंथी राजनीतिज्ञ उसके हृदय में आसन जमाए बैठे थे। यहाँ तक कि बंबई-चुनाव में मेनन की जीत भी उसे अच्छी लगी नहीं। उसका ख्याल था कि बंबई अमरीका में भारतीय दोस्तों ने जितना काम किया, वह काम आधे दिल से किया होगा। वह साम्यवाद से और रूस-चीन से भयानक दुश्मनी रखता था और वह इस संभावना से डरता रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि अमरीका से पहले रूस चाँद पर पहुँच जाए।

हमारे बॉस जगत के इस राजनीतिक रुख से बहुत खुश थे। लेकिन वे जनता से डरते थे क्योंकि अमरीका-परस्ती जनता में न केवल लोकप्रिय नहीं थी वरन सामने का पानवाला और उसके आस-पासवाले गंदी और बौनी होटल में बैठे हुए मैले-कुचैले लोग भी अमरीका को गाली देते थे। अमरीका पर किसी का विश्वास नहीं था।

इस भावना को जगत भी जानता था। इसलिए उड़ते-उड़ते ही वह मुझसे राजनीतिक बात-चीत करता और उस बात-चीत के दौरान में भारतीय अखबारों में प्रकाशित समाचारों का एक ढाँचा बनाते हुए लेकिन कोई आलोचना न करते हुए, मैं उसकी बात का खंडन कर देता, किसी विरोधी तथ्य पर उसका ध्यान खींचता। यही कारण है कि

क्रमश: उसकी ज्ञान-ग्राही बुद्धि मेरी अवहेलना न कर सकी और मेरी ओर खिंचती चली गई। इसका श्रेय मैं अवश्य लूँगा कि मैंने उसे किसी भी देश के शासक और जनता - इन दो के बीच की एकता और मित्रता पहचानने की युक्तियाँ सिखलाईं।

यह निश्चित था कि मैं और वह दोनों आपस में टकरा जाते।

व्यक्तियों की टकराहट बहुत बुरी होती है, जहर पचने से फैलता है, कीचड़ उछालने से उछालनेवाले के और झेलनेवाले के - दोनों के चेहरे बदसूरत हो जाते हैं। मैं हमेशा दो प्रकार के परस्पर-विरोधों में भेद करता आया हूँ। एक वे जो सही हैं, जहाँ वे तेज होते रहने चाहिए;ारभ्ज्ञ

और एक वे जो गलत हैं, जहाँ वे होने ही नहीं चाहिए। जैसे राजनीति में वैसे ही मानव-संबंधों के क्षेत्र में भी हमें सही विरोधों को, उनके सही-सही अनुपात में, सही-सही जगह और सही-सही ढंग से जरूर बनाए रखना चाहिए - यहाँ तक कि तेज करना चाहिए। यहाँ झुकने की जरूरत नहीं है। लेकिन कुछ ऐसे परस्पर-विरोध होते हैं, जो हम हमारी नासमझी, कम समझी अथवा क्षुद्र अहंमूलक स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं। मानव-संबंध उलझ इसीलिए जाते हैं कि हम गलत जगह झगड़ा कर लेते हैं और गलत जगह झुक जाते हैं।

अगर कोई दूसरा शहर होता तो शायद जगत का और मेरा यदि परिचय होता तो भी पट नहीं सकता था, जम नहीं सकता था। लेकिन परिस्थिति दोनों को एक साथ ले आई। मैं लोगों में उठता-बैठता। उनसे फिजूल टकराने की कोई कोशिश न करता और सारे समाज में रह कर भी एक अत्यंत तीव्र नि:संगता और अजनबीपन महसूस करता। लगभग दो वर्षों के क्रमश: बढ़ते हुए प्रारंभिक परिचय के अनंतर मैंने जगत की आपेक्षिक निकटता प्राप्त की। और ज्यों ही हमने एक-दूसरे के सामीप्य अनुभव किया और साथ रहने लगे, त्यों ही लोगों की नजरों में आ गए और अखरने लगे। इस तरह मानो हममें से कोई-न-कोई व्यक्ति आपत्तिजनक हो और दूसरे को अपनी सुहबत से बिगाड़ रहा हो।

एक बात साफ है कि हमें उस महफिल में मजा नहीं आता था जिसमें विविध प्रकार के भोजनीय पदार्थों से ले कर कैंसर और ल्यूकीमिया तक तथा भूतों से ले कर कम्युनिस्टों तक चर्चा होती। ये महफिलें जो शाम के पाँच बजे से ले कर रात के बारह-एक बजे तक चलती रहतीं, उस अभाव का परिणाम थीं जिसे अकेलापन कहते हैं। हम जो यहाँ बीस थे, वे चाहे परिवार में ही क्यों न रहें, अपने को अकेला, किसी शाखा से कटा हुआ और अधूरा महसूस करते थे। और अपने अकेलेपन की वेदना से

भागने के लिए, वक्त काटने की एक तरकीब के तौर पर, सामूहिक भोजन, सामूहिक पार्टी, गपबाजी, महफिलबाजी का आसरा लिया करते। लोग भले ही उसका मजा लिया करें, मैं ऐसे बेढंगे, बेजोड़ और बेमेल सोसाइटी में रह कर बड़ी ही घुटन महसूस करता। यही हाल जगत का भी था। फर्क यही था कि मुझे इस तरह अकेलेपन से भागने और वक्त काटने की इच्छा नहीं रहती थी, न जगत को ही रहती थी, इसलिए हम लोग 'अनसोशल' कहलाते थे। क्लब की जिंदगी अगर सामाजिकता का लक्षण है तो मैं ऐसी सामाजिकता से बाज आया।

लोगों को ताज्जुब होता कि आखिर हम अपना वक्त कैसे काटते हैं! और जब उन्होंने यह देखा कि ब्रिज, साँपों और भूतों की चर्चा, एक-दूसरे की टाँग खींचने की होड़ और राजनीतिक गप की बजाय हम घूमने निकल जाते हैं और कभी हैमिंग्वे या डिकेंस अथवा एड्ना विन्सेंट मिले की चर्चा करते हैं तो उन्होंने अपनी नाराजगी जाहिर की। एक बार जब हम तरह-तरह की चर्चाओं में विलीन रात के आठ बजे घर पर लौटने की बजाय साढ़े नौ के करीब लौटे तो उनमें से एक ने कहा, 'क्यों भई! जानते नहीं, भले आदमी रात में नहीं घूमा करते!'

और, हम ताज्जुब करने लगे कि आखिर ये ऊँची डिग्रियोंवाले लोग, जिन्होंने बड़ी उपाधियाँ प्राप्त की हैं, इतने जड़ और मूर्ख क्यों हैं!

दुबले, ऊँचे, इकहरे बादाम के पेड़ के नीचे हमारे साथियों को झुका हुआ देख कर मैं समझ गया कि उनकी आँखे हरे कच्चे बादामों को खोज रही हैं जो या तो आसपास की क्यारियों की काली मिट्टी में जम गए हैं या क्यारियों के बीचों-बीच जानेवाली खुशनुमा पगडंडी पर गिरे पड़े हैं। बादाम के पेड़ के आगे पूरब-दक्षिण की तरफ बड़ी और ऊँची भूरी-भूरी दीवार दिखाई दे रही है, उसके इस तरफ और बादाम के पेड़ के उस तरफ मटर और टमाटर की हरियाली फैली हुई है और मैंने देखा कि कुछ लोग वहाँ भी पहुँच गए हैं। उधर बगीचे के दक्षिण की तरफ जो मुँडेर है उसके नीचे लाल कन्हेर की झाड़ियों के आगे दूर तक तालाब लहरा रहा है जिसकी मटमैली नीली लहरें सूरज की किरणों को वापस फेंक रही हैं और इस तरह चाँदी और काँच के चमचमाते टुकड़ों की धारदार चमक पैदा कर रही हैं। तालाब के उस पार, आम के दरख्तों के नीचे कोई साइकिल पर तेज चला जा रहा है। एक मन हुआ कि आखिर हम अपने साथियों के पास बादाम के पेड़ के नीचे क्यों न पहुँच जाएँ और कुछ मटर जेब में भर लें। लेकिन फिर सोचा कि फिर वे लोग हमारा पिंड नहीं छोड़ेंगे। यह खयाल मेरे और जगत के मन में एक साथ आया। मैंने उससे कहा, 'चलो, जल्दी चलो, नहीं तो अटक जाएँगे!'

यह बात हमारे मुँह से निकली ही थी कि पीछे से एक और आवाज आई, 'ऐसी भी क्या जल्दी है, हम भी तो चल रहे हैं!'

तबीयत तो यह हुई कि पीछे घूम कर न देखें लेकिन हम जानते थे कि मोटे तल्लों के बूट हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगे। बोगनबिला के फूलों से लदी हुई मेहराबवाले बगीचे के फाटक तक पहुचते ही उसने हमें पकड़ लिया और जगत की पीठ पर धप पड़ गई और एक गोरा सुनहला चेहरा, हमें चिढ़ाता हुआ, बोल उठा, बॉस तुम्हें बुला रहे हैं!

शायद उस नवागंतुक ने मेरी आँखों में क्रोध और घृणा की चिनगारी देखी होगी। तभी उसने एक साँस में कह डाला, 'मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो तुम्हें चाय पिलाना चाहता हूँ!'

हम लोग चुपचाप बाहर निकल गए। और पता नहीं क्यों हममें एक चुप्पी, एक फासला और साथ-ही-साथ अपना-अपना घिराव बढ़ता गया। मशीन के पहियों की भाँति हमारे पैर दाहिनी ओर मुड़ गए जहाँ से रास्ता, तालाब के किनारे-किनारे, आम के दरख्तों के नीचे से चला जा रहा था।

ज्यों ही हम बीस गज आगे बढ़ गए होंगे, हमारे सुनहरे चेहरेवाले साथी ने कहा, 'यार, नीचे उतर कर चलें।'

मैंने एकदम ठहर कर, स्तब्ध हो कर पूछा, 'क्यों?'

उसने कहा, 'यह नया रास्ता है!'

मैंने जगत की ओर देखा। वह कटी डाल-सा, निजत्वहीन और शिथिल दिख रहा था। मैंने कहा, 'चलो।'

जिस रास्ते पर अब तक हम चल रहे थे, वह तालाब के बाँध पर बना हुआ था। बाँध के बहुत नीचे एक छोटा-सा नाला बह रहा था और इधर-उधर घने-घने पेड़ तितर-बितर दिखाई दे रहे थे। हम अपने को सँभालते हुए नीचे उतर गए और नाला फाँद कर उस ओर जा पहुँचे जहाँ से एक पगडंडी शहर की ओर जा रही थी। फाँद करके मैं नाले की ओर क्षण-भर देखता रहा। वहाँ छोटी-छोटी मछलियाँ आनंदपूर्वक क्रीड़ा कर रही थीं। ऐसा लगता था कि उनकी क्रीड़ा को घंटों देखा जा सकता है।

पगडंडी पर दो ही कदम आगे बढ़ा हूँगा कि सामने लाखों और करोड़ों लाल-लाल दियोंवाला गुलमुहर का महान वृक्ष मेरे सामने हो लिया। उसके तल में अधसूखे,

मुरझाए और सँवलाए फूल बिखरे हुए थे। और दो-चार फटी चड्ढियोंवाले मैले-कुचैले लड़के वहाँ न मालूम क्या-क्या बीन रहे थे!

मैंने शहर का यह हिस्सा देखा ही नहीं था। बाईं ओर अस्पताल की पीली दीवार चली गई, जिसके खतम होते ही छोटे-छोटे मकान, छोटे-छोटे घर, मिट्टी के घर चले गए थे। नि:संदेह अस्पताल के पिछवाड़े की यह गली थी। दाहिनी ओर खुला मैदान था, जिसमें इमली और नीम के पेड़ों के अलावा छोटे-छोटे खेत थे। एक खेत के बाद दूसरा खेत। ये तरकारियों के खेत थे। छोटी-छोटी मेढ़ें बनी हुई थीं। उन खेतों पर खूब मेहनत की गई थी। ऐसा लगता था कि ये खेत नहीं वरन कल्पनाशील चित्रकार-द्वारा निकाले गए मानव हाथ के चित्र हों। सब कुछ चित्रात्मक था। ये छोटे-छोटे खेत! वो इमली के दरख्त, जिसके नीचे गायें चर रही थीं और वे नीम के पेड़ जिसके तले एक चट्टान पर कोई बेघर-बेमकान आवारा अपनी मैली कुचैली गठरी खोल रहा था। उसने हमारी तरफ देखा, हमने उसकी तरफ। उसका चेहरा साँवला अंडाकार था, उस पर भोलेपन से भरी हुई एक अजीब मुरदनी छाई हुई थी। उसने मेरी कल्पनाओं को उकसा दिया। वह कौन था? किसी गरीब खेतिहर का लड़का, जो फट से भाग गया था और जो शहर में अब चाय न मिलने से थका-हारा यहाँ बैठा था! अब खेत खतम हो गए। एक नए सड़क की पुलिया दूर से दिखाई देने लगी। बाईं तरफ के घर गाँव के गरीबों के थे। बाहर खाटों पर पेड़ों की साया में माँएँ लेटी हुई थीं। कुछ लड़के ऊधम कर रहे थे। लेकिन मेरी आँखे एक जगह जा कर ठिठक गईं। एक मैली-कुचैली खाट पर एक बूढ़े की जिंदा ठठरी पड़ी हुई थी और उस ठठरी के दुबले चेहरे की आँखों में एक ज्योति थी। ऐसी ज्योति जो ममतापूर्वक एक बालक को देख रही थी।

वह दो साल के शिशु की ठठरी थी, जिसके सारे बदन पर सिलवटें पड़ी हुई थीं और उसके सलवट-भरे बाल-मुख पर वेदना की चीख निःशब्द हो कर जड़ हो उठी थी। वह बूढ़ी ठठरी अपने हड़ियल हाथों से शिशु-ठठरी को खिला रही थी, प्यार करती-सी दिखाई दे रही थी और वह शिशु अनजानी दुनिया को अपनी त्रस्त आँखों से देख रहा था। उस शिशु का चेहरा बिलकुल मैला था यद्यपि मूलत: उसकी त्वचा गोरी रही होगी।

मेरे अवचेतन में से अपने अनजाने में ही एक जबर्दस्त हाय निकली ऐसी कि सुनहरे चेहरेवाला साथी मुझे थोड़े विस्मय से देखने लगा।

उसने कहा, 'क्या हुआ?'

मैंने कहा, 'कुछ नहीं।'

फिर मैं अपने खयालों में डूब गया। इतने में गली को पार करती हुई एक गटर दिखाई दी, जो ठीक बीच में आ कर फैल कर फूल गई थी। उसमें का कालापन भयानक था। उसके कीचड़ में एक दुबली मुर्गी फँस गई थी और पंख फड़फड़ा कर निकलने की कोशिश कर रही थी।

सुनहरे चेहरेवाले ने मुझसे कहा, 'अगर बॉस ने देखा कि हम इस गली में से जा रहे हैं तो समझ जाइए की मौत आ गई!'

मैंने कहा, 'क्यों?'

उसने कहा, 'इस गली में कमीन लोग रहते हैं और सभ्य लोगों को यहाँ से गुजरना नहीं चाहिए।'

मैंने कहा, 'क्यों?'

लेकिन यह कहते-कहते मेरी भौंएँ तन गईं, शरीर में एक उत्तेजना समाने लगी, शायद मेरी आँखों में भी तेजी आ गई होगी।

सुनहरे चेहरे ने फिर कहा, 'बॉस के अनुसार, न सिर्फ यहाँ कमीन लोग रहते हैं, वरन ऐसे घर भी हैं जहाँ...'

मैं समझ गया। उसका मतलब था कि यहाँ व्यभिचार होता है। मैंने कहा, 'खुल कर कहो न! क्या तुम यह कहना चाहते हो कि यह वेश्याओं का मुहल्ला है?'

मेरे इस कथन से सुनहरे चेहरेवाले को एक धक्का लगा। उसने कहा, 'कौन कहता है!'

मैंने उलट कर पूछा, 'तो फिर क्या?'

उसने जवाब दिया, 'यहाँ खुले व्यभिचार होता है।'

'होगा! हमसे क्या?'

'हमसे क्यों नहीं! हम इस विशाल सांस्कृतिक केंद्र के सदस्य हैं और अगर हम इस गंदी और कुप्रसिद्ध गलियों में पाए गए तो हमारा और हमारे केंद्र का नाम बदनाम होगा!'

'तुम्हारी और तुम्हारे बॉस की ऐसी-तैसी!' यह कह कर मैं चुप हो गया।

मैं आगे कहता गया, 'तुम्हारे बॉस का चाल-चलन भी तो बहुत प्रसिद्ध है!'

सुनहरे चेहरेवाला नवयुवक बड़ी षड्यंत्र-भरी मुस्कान प्रकट करने लगा। जगत ने उसकी पीठ पर धप्प जड़ दी और वह बोल उठा, 'क्यों मार रहे हो भाई!'

बात असल में यह थी कि हमारे बॉस, जो इस सांस्कृतिक केंद्र के सर्वेसर्वा हैं, बड़ी फ्रिक के साथ हम लोगों की देखभाल करते हैं। हमें खूब सहायता देते हैं। इस केंद्र के वे प्रमुख हैं, एवज में उससे एक पैसा नहीं लेते। न केवल इस केंद्र को वरन उसके कर्मचारियों को भी यथाशक्ति सहायता देते रहते हैं, वे हम सबसे प्रेम रखते हैं, चाहते हैं कि हम अच्छे ढंग से रहें और यहाँ के सर्वोच्च वर्ग में गिने जाएँ। इसलिए वे हमारी चाल-ढाल, कपड़े-लत्ते, यहाँ तक कि हमारी गति-विधि पर भी नजर रखते हैं। शहर में उनके बारे में यह कहा जाता है कि वे अपने पुराने पापों को धो रहे हैं।

वे 'पाप' क्या हैं! हम लोग नहीं जानते। किस्सा मुख्तसर यह है कि वे यहाँ की सूती मिल के असिस्टेंट मैनेजर थे। यह सूती मिल एक प्रसिद्ध अंगरेज कंपनी की थी। इन अंगरेजों में से बहुतेरों के अपने परिवार न थे। वे अंगरेज अफसर नीची जाति की स्थानीय औरतों से प्रेम करते। नौकरानियों के रूप में वे उनके घर में रहतीं। मजा यह है कि (जैसे कि मुझे कई लोगों ने बताया) वे नौकरानियाँ, जो उनके यहाँ पहुँच जातीं, इस बात का अभिमान रखती थीं कि वे बड़ों के 'घर' में हैं। स्वाधीनता के बाद, यह मिल जब हिंदुस्तानियों को बेच दी गई तो कई अंगरेजों ने अपनी 'प्यारी' नौकरानियों के लिए बड़े-बड़े घर-मकान बनवा दिए और उनकी एक जायदाद खड़ी कर दी।

यह किस्सा है। मनुष्य का चरित्र उसकी संगत से पहचाना जाता है। संभव है, हमारे बॉस की भी इसी तरह की प्रेमिकाएँ रही हों। कौन नहीं जानता कि एक प्रदेश के एक मंत्री - जिनका नाम मैं यहाँ नहीं लेना चाहता - की एक रखैल यहाँ आलीशान मकान में रहती है, जिसे शहर के बाहर के मुहल्ले में बनाया गया है। शहर में किसी से भी पूछ लीजिए, उसके मकान का अता-पता आपको मिल जाएगा।

बॉस के विरुद्ध तिरस्कार के कई कारण थे, जिनमें से एक यह भी था कि वे स्थानीय नरेश के एटर्नी रहे। वहाँ खूब आना-जाना रहा। और उसी की (वह अब मर गया है) सहायता से उसने परिश्रम करके यह विद्या केंद्र खोला। वे एक बड़ी-सी जमीन के मालिक हैं और कई छोटे-मोटे धंधों में उनका पैसा लगा हुआ है। लेकिन चूँकि वे एक प्रसिद्ध विलायती मिल के असिस्टेंट मैनेजर रह आए तो इसलिए उन्होंने यहाँ के बहुत-से सेठ-साहूकारों पर उपकार किया। वे उपकार करने की शक्ति रखते थे। लोगों पर अहसान करके उन्हें अपनी कठपुतली बनाने में बड़ा मजा आता था। यों कहिए कि

लोगों को उनकी कठपुतली बनने में मजा आता था। बात दोनों ओर से थी। महत्व की बात यह है कि वे कायदे के पाबंद थे और कानून के अनुसार काम करने में हिचकिचाते नहीं थे। यूनियनों में संगठित मजदूर-वर्ग उनसे कभी खुश नहीं रह सकता था, क्योंकि वे अंगरेजों के वफादार नौकर थे, और इसीलिए उनकी चलती भी थी। स्वाधीनता के बाद भी कुछ दिनों तक वे मिल के असिस्टेंट मैनेजर रहे। लेकिन नए मालिक से उनकी नहीं पटी। उन्होंने नौकरी छोड़ दी। उधर, भूतपूर्व मुख्यमंत्री (जो अब मर गए हैं) - उनसे उनकी खूब पटती थी इसलिए अधिकारी वर्ग पर भी उनका अच्छा-खासा असर था। संक्षेप में, वे इस शहर के बहुत प्रभावशाली और शक्तिशाली लोगों में से थे। और पूरे सामाजिक संदर्भ को देखते हुए उनके संबंध में बहुत-से लोगों की धारणाएँ बुरी होना स्वाभाविक ही था।

यह एक तथ्य है। फिर भी दूसरा यह भी है कि विद्यार्केंद्र खोलने के साथ-ही-साथ उनका स्वभाव बदलने लगा।

पहले वे बहुत तेज मिजाज के, जिद्दी, न्याय-प्रिय (प्रचलित न्याय के सीमित अर्थ में) लेकिन अपनी करके छोड़नेवाले लोगों में से थे। उनकी स्त्री बहुत जल्दी मर गई थी, इसलिए दो बच्चों के पिता होते हुए भी वे एकदम अकेले थे। अब जबसे उन्होंने यह विद्या केंद्र खोला, उनमें एक अजीब सी नरमी आ गई। उनकी संवेदनशीलता इतनी बनी हुई थी कि वे, जो पहले आदमी को सूँघ कर उसकी पहचान बता देते थे, अब केवल उसकी मुखमुद्रा को देख कर और उसके चेहरे की शिकन को देख कर उसके दिल को ताड़ जाते, स्वभाव जान जाते। वे बहुत ज्यादा अकेले थे और उनके सामने यह समस्या बनी रहती थी कि वक्त कैसे काटें। इसलिए वे विद्या केंद्र के कर्मचारियों में बैठ कर अपना समय व्यतीत करते थे।

बस इसी स्थान पर छुपे हुए संघर्ष की वह पृष्ठभूमि थी, जिसके बिना यह किस्सा समझ में नहीं आ सकता। यह उनकी संवेदनशील मनुष्यता थी, जिससे प्रेरित हो कर वे अपने साथियों की सहायता के लिए दौड़ पड़ते और अपने नुकसान की परवाह नहीं करते थे। वे राजा आदमी थे। वे प्रेम करते थे। और, प्रेम की तानाशाही भी उनमें थी जो शासकवर्ग की तानाशाही मनोवृत्ति से घुल-मिल कर इतनी एक प्राण हो गई थी कि यह कहना कठिन था कि वह शासकवर्ग की तानाशाही है या प्रेम का अधिनायकत्व है। उनके हाथ से जितनी अधिक सेवा और सहायता होती जाती उनकी मनोवैज्ञानिक रचना में परिवर्तन होता जाता। प्रेम-भाव बढ़ता जाता और प्रेम की तानाशाही बढ़ती जाती। उनका भोलापन भी बढ़ता जाता। उनकी खुशामद कर, उन्हें विश्वास ले कर उन्हें धोखा देना बड़ा ही सरल था। यद्यपि ऐसी कोई वारदात अभी तक हुई नहीं।

लेकिन सबको यह बात साफ नजर आ रही थी। लिहाजा, कुछ लोग इसी काम में जुटे रहते। इतना अच्छा था कि वे इस रहस्य को खूब अच्छी तरह समझते थे, क्योंकि अपने जीवन-काल में उन्हें ऐसों का खूब तजुर्बा मिल चुका था।

और, जैसा कि होता है, वे प्रेम के अधिकार का प्रयोग करते नि:स्वार्थ भाव से। लेकिन यहीं गड़बड़ थी; क्योंकि अब उन्हें प्रेम के अधिकार से दूसरों का जीवन-निर्माण करने में बड़ा मजा आ रहा था।

लोग इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि उनके ढाँचे में अपनी जिंदगी फिट करें। उनका खयाल था कि खूब अच्छी जिंदगी बिताई जाए - पैसा हो, ठाठ हो, समाज पर असर हो, और हो सके तो हाथ से अच्छी चीज बन जाए। उनके इस खयाल से हमारे यहाँ लगभग सभी एकमत थे। लेकिन जीवन के विभिन्न विषयों पर लोगों के अलग-अलग आचार-विचार थे। एक तरह से देखा जाए तो अपनी खुद की जिंदगी से वे रिटायर हो चुके थे। जिंदगी में ठाठ से मतलब क्या! घर, जमीन, जायदाद, ऐश! और महफिल या दरबार में मसालेदार गपबाजी। सब लोग तो वैसा करने से रहे, क्योंकि उन्हें उतनी तनखाह ही नहीं मिलती थी। सिर्फ महफिल में बैठ कर मसालेदार गपबाजी ही बच रही थी। सो लोग करते ही थे। और घर, जमीन, जायदाद का मोह, उन्नति का मोह सबको था, बशर्ते कि वह पूरा हो! और, फिर भी, आदमी की पसंदगी-नापसंदगी, रहन-सहन आदि के तरीके अलग-अलग होते हैं! किसी दूसरे आदमी के ढाँचे में वे फिट नहीं किए जा सकते। अपनी-अपनी उन्नति की कल्पना भी अलग-अलग होती है!

जो हो, एक ओर उनके अहसान और दूसरी ओर उनके प्रेम से दब कर हम लोग उन्हें अपना 'साथ' प्रदान करते, कि वे अपना वक्त काट सकें। अपना साथ उन्हें प्रदान करना एक तरह से अनिवार्य कर्तव्य हो गया था। दूसरे वे भी आज चाय के बहाने, कल पार्टी के बहाने, परसों आउटिंग के बहाने, उसके अगले सिनेमा-फिल्म्स के प्रदर्शन के बहाने सब लोगों को बुला कर अपना दरबार लगा ही लिया करते। धीरे-धीरे लोगों को उनके दरबार में जाने की आदत पड़ गई। जो कर्मचारी उनके दरबार में न बैठता वह अपने को असुरक्षित अनुभव करता; जिन कर्मचारियों का कार्यवश वहाँ जाने को नहीं मिलता, उनके मन में एक गुत्थी पैदा हो जाती कि कहीं ऐसा न हो कि उनकी अनुपस्थिति में कुछ का कुछ हो जाए।

इस तरह लोगों में एक अजीब दो-रुखी पैदा हो गई थी। एक ओर तो वे दरबार छोड़ कर जाने में अचकचाते थे, दूसरी ओर वे चाहते थे कि दरबार न हो और उन्हें घूमने-फिरने

की खूब स्वतंत्रता रहे। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। इस प्रकार कभी-कभी वे अपने ही पर झुँझला उठते, कभी नपुंसक क्रोध से भर जाते। लेकिन वे प्रकट रूप से यह न कहते कि हमें दरबार अच्छा नहीं लगता। उधर, लगभग रोज लंच, डिनर, पार्टी, फिल्म-शो आदि-आदि हुआ करते और चूँकि सभी लोग निमंत्रित होते तो ऐसा निमंत्रण अस्वीकार करना भी मुश्किल होता। ये लंच या डिनर कभी एक व्यक्ति देता तो कभी दूसरा व्यक्ति, कभी (अधिकांश वे ही) बॉस! हफ्ते में कम से कम चार-पाँच बार इसी तरह खाना-पीना होता। यदि कोई हाजिर न हो तो निमंत्रण देनेवाला खुद बुरा मानता। मतलब यह कि कुल मिला कर यह हालात थी कि कोई भी जान-बूझ कर दरबार में जाना टाल नहीं सकता, भले ही वह इस लंबे वक्त से तंग आ कर, बाद में पीठ पीछे चिड़चिड़ाए या कुछ करे!

मजा यह है कि हर आदमी किसी-न-किसी तरह से, बॉस में अपने समान कोई-न-कोई गुण देख, और भले ही वह उसे कहे या न कहे, इस बात पर वह खुद फिदा हो जाता था। और हर एक को तो लगता कि बॉस उस पर व्यक्तिगत रूप से प्रसन्न हैं। शायद इस धारणा को बॉस खुद अपने कर्मचारियों में बढ़ाते थे। वे अहसान, प्रेम और संग-द्वारा दूसरों की गतिविधियों पर शासन कर अपना प्रभुत्व-लोभ पूरा करते थे; ऐसी मेरी कल्पना है।

दूसरी तरफ उस दरबार का एक सदस्य दूसरे सदस्य से सिर्फ ऊपरी तौर से मिलता था क्योंकि ज्यादातर लोग बेढंगे, बेजोड़ और बेमेल आदमी थे। जिंदगी कैसे जीयी जाए, सब लोगों के अलग-अलग खयाल थे। सब एक-दूसरे से अलग थे और हर एक में ऐसा गहरा अकेलापन था, जिसे काटने के लिए मसालेदार गपबाजी के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। महफिलबाजी के बावजूद, उनके अकेलेपन की गहराइयाँ बड़ी ही अँधेरी और निजी थीं। इस माहौल में सब लोग यदि एक-दूसरे की सहायता भी करते तो भी काटने के लिए दौड़ते। एक-दूसरे की टाँग खींचना एक मामूली बात थी। एक अजीब कैद थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको विफल अनुभव कर रहा था।

और, फिर भी किसी में यह साहस नहीं था कि इस उलझी गुत्थी को तोड़े। क्योंकि यह संभव था कि यदि कोई उसे तोड़ने की कोशिश करे, तो दूसरा आदमी उसके विरुद्ध और अपने हित में नाजायज फायदा उठा लेता। और लोग अपना-अपना हित उसी प्रकार देखते थे, जैसे चींटी गुड़ को।

इस विद्या केंद्र में किसी को भी विद्यानुराग नहीं था। यहाँ तक कि पढ़ाने का जो काम है उससे संबंधित बातों को छोड़ कर जो व्यक्ति इधर-उधर किताबें टटोलता या अपने विषय में रस लेने लगता और उस विषय में रसमग्न हो कर बात-चीत करता तो लोग बुरा मान जाते। समझते कि वह पढ़ाकू हो रहा है। हमारे यहाँ से जो लोग पी-एच.डी. या डी.एस-सी. होने गए, वे अपने आँकड़े समझा कर गए थे। वे सिर्फ पी-एच.डी. चाहते थे, जिससे कि वे अगली सीढ़ी पर चढ़ सकें। यही क्यों, हमारे यहाँ का जो सबडिविजनल ऑफिसर था, वह खुद डी.एस-सी. था, जबकि वह पढ़ा-पढ़ाया सब-कुछ भूल चुका था।

इस प्रकार, चाहे जैसे व्यक्तिगत उन्नति करना एक प्राकृतिक नियम का उच्च और अनिवार्य पद प्राप्त कर चुका था। इन तथ्यों को मैं कण-भर भी बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कह रहा हूँ। विज्ञानवालों को यह मालूम नहीं था कि हाल ही में कौन-कौन से महत्वपूर्ण आविष्कार हो रहे हैं और हिंदीवालों को यह ज्ञान नहीं था कि आजकल इस क्षेत्र में क्या चल रहा है। और जो मालूम भी था, वह केवल सुना-सुनाया था, अस्पष्ट था, धुँधला और उलझा हुआ था। और, इस बीच हमारे यहाँ के एक 'विद्वान' ने अपने विषय के और दूसरे विषय के अपने विश्वविद्यालय के और दूसरे विश्वविद्यालय के तरह-तरह के 'गेस-पेपर्स' निकाल कर एक प्रकाशक से आठ-एक सौ रुपए कमा भी लिए थे।

वैसे हम सब नौजवान थे, कई उपाधियों से विभूषित थे, अपने विषय के आचार्य माने जाते। एक तरह से हम भोले थे, सरल हृदय भी थे, हम किसी के दु:ख से पिघल सकते थे, सहायता भी करते। लेकिन, हममें सामाजिक अंतरात्मा नहीं थी, सामाजिक चेतना नहीं थी क्योंकि असल में हम सब लोग हरामखोर थे। और मजा यह कि वैसे व्यक्तिश: हम बुरे भी नहीं थे; भलेमानस कहलाते थे, अच्छे आदमी थे। अच्छा आदमी वह होता है जिसकी बुराई ढँकी रह जाती है चाहे आप-ही-आप, चाहे किए-कराए से। हम ऐसे भलेमानस थे।

हमने उस गली के बीच में से गटर पार की ही थी कि एक साँवली औरत दिखाई दी, जिसका नाक-नक्श संगमूसा की चट्टान में से काटा गया दिखाई देता था। वह इतनी मजबूत थी, उसका स्नायु-संस्थान इतना दृढ़ था, कि लगता था, उसका चेहरा भी, जिसकी रेखाकृति सरल और निर्दोष थी, उसी शक्ति और दृढ़ता का परिचायक है। कोई भी कह देता कि उसके श्यामल मुखमंडल पर एक गौरवपूर्ण अभिमान, एक मजबूत गुस्सा और एक थमी हुई रफ्तार है। मुझ पर उसके सौंदर्य का (यदि वह सौंदर्य कहा जाए तो) एक हल्का-सा आघात हुआ। और मुझे गोर्की की कहानियों के पात्र याद आने लगे। गुलमोहर के पेड़ के नीचे जाने क्या बीनते हुए फटेहाल लड़के पेड़ के नीचे

पत्थर पर बैठा हुआ आवारा चेहरा, और अब यह स्त्री-मूर्ति जो मानो संगमूसा की चट्टान काट करके बनाई गई हो।

सुनहरे चेहरेवाले ने कहा, 'यह धोबिन है, मेहनत से उसका शरीर बना है।'

मेरे मुँह से निकल गया, 'चंडीदास की प्रेमिका।'

जगत ने मुझे सुधारा, 'शी:, चंडीदास की प्रेमिका के चेहरे पर इतने कठोर भाव नहीं हो सकते!'

मैंने तुरंत ही अपने-आपको सुधार कर कहा, 'वह चंडीदास की प्रेमिका की बहन तो हो सकती है। नहीं-नहीं! वह तो गोर्की की कोई पात्रा है!'

सुनहरे चेहरेवाला समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री था। उसने कहा, 'यह मिक्स्ड ब्लड (वर्णसंकर) है, मेस्टिजो (दक्षिण अमेरिका के वर्णसंकर के समान) है।' और मुझे देख कर वह हँस पड़ा।

मैं उसका भाव समझ गया। इस शहर की समाजशास्त्रीय लोक-प्रक्रिया की ओर उसका इशारा था। यहाँ के, इस क्षेत्र के, इस प्रदेश के मूल देशवासियों ने शायद ही कभी राज्य किया हो। साधारण जनता मूलत: किसान थी। वह निचली जातियों से बनी थी। राजस्थान के और पश्चिम उत्तर प्रदेश के, आंध्र के और महाराष्ट्र के लोगों ने आ कर यहाँ जमीन-जायदाद बनाई। यहाँ का मध्यवर्ग इन्हीं लोगों से बना। और पुराने जमाने से इन जमीन-जायदाद बढ़ाते हुए यहाँ की निम्नवर्गीय स्त्रियों को अपने घर में रखा और उससे जो वर्णसंकर संतानें पैदा हुईं, वे भी अंतत: उसी निचली जनता में मिल गईं। नि:संदेह, इस जनता में भीतर-ही-भीतर उच्चवर्गीय हिंदुओं के प्रति असंतोष और विरोध का भाव पैदा होता गया, और राजनीति के अभाव में उसने पुराने जमाने में ही सामुदायिक रूप ग्रहण कर लिया। नतीजा यह हुआ कि निचली जातियों में, सुदूर अतीत में हीं, सतनामियों और कबीर-पंथियों का जोर बढ़ा और प्रभाव बढ़ा, और आधुनिक काल में ईसाई मिशनरियों का और अत तो बहुतेरे नव-बौद्ध भी हो गए। फिर भी उस निचली जनता में जो सनातनधर्मी बने रहे, उन्होंने अपना सांस्कृतिकरण करते हुए जनेऊ पहनना शुरू कर दिया और अपने-अपने बच्चों को आधुनिक प्रकार की शिक्षा-दीक्षा दिलाने का प्रयास करने लगे।

उनकी दुनिया ही अलग थी। वह एक अलग ही राष्ट्र था। वह श्यामल जन-समुदाय अपने ढंग से सोचता था। और उनके मुहल्लों में और गाँव-गाँव में उनके अपने-अपने

लीडर पैदा हो रहे थे। वे लीडर सामने दिखाई नहीं देते थे। राजनीति में उनकी दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन राजनीतिक पार्टियाँ वोटों के लिए, उन्हीं मुखियाओं के पास जाती थीं और फिर उस श्यामल जन-समुदाय को बड़े ठाठ से भूल जाया करती थीं।

सुनहरे चेहरेवाला हमारा साथी बड़ा मजेदार आदमी था। वह था तो मारवाड़ी का बच्चा, जिसके कई मकान बीकानेर में थे, लेकिन उसका घर इसी शहर से बहत्तर मील दूर एक गाँव में था। वह बड़ा ही घुमक्कड़ था। उसे एक जगह चैन नहीं पड़ती थी। वह अपने आचार-विचार से समाज के छोटे और समाज के बड़ों में भेद नहीं करता था। उसकी निरीक्षण-शक्ति अद्भुत थी। वह इस प्रदेश की जनता को खूब अच्छी तरह जानता था। उनकी गंदी और धुएँधार होटलों में चाय पीने में उसे मजा आता। बहुत ही अपनेपन से उनसे पेश आता।

अब मुझे समझ में आया कि वह मुझे कहाँ ले जा रहा है। वह हमें इसी प्रकार की एक होटल में ले जा रहा था।

सुनहरे चेहरेवाले ने मुझसे कहा, 'अब आप हेमिंग्वे भूल जाइए, मैं आपको गंदी जगह में बहुत अच्छी चाय पिलाने ले जा रहा हूँ।'

अब सड़क आ गई थी। होटल सड़क पर ही था। पानवालों की तीन दुकानें वहाँ थीं।

हम ज्यों ही होटल में घुसे, जगत ने अपनी फर्राटेदार अंगरेजी में कहा, 'अगर बॉस ने देख लिया तो वह तुरंत ही हमें इंस्टीट्यूशन (संस्था) से निकाल बाहर करेगा। मैं तो मिस्टर भचावत को आगे कर दूँगा। कहूँगा कि यह मुझे वहाँ ले गया था, मैं तो भोला-भाला आदमी हूँ, मैं क्या जानूँ कि वह मुझे किस डिसरेप्यूटेबल (बदनाम) जगह ले जाता है...' यह कह कर जगत जोर से हँस पड़ा।

सुनहरे चेहरेवाले ने उसकी ओर आँखें गड़ाते हुए और गंदी गाली देते हुए कहा, 'जबान बंद करो। डिसरेप्यूटेबल तुम हो। साले, तुम्हारे... डिसरेप्यूटेबल हैं, और तुम्हारा बॉस डिसरेप्यूटेबल है और तुम्हारी जेब डिसरेप्यूटेबल है।'

जगत ने इन गालियों को, प्यार के फूलों की बरसात के रूप में ग्रहण कर सुनहरे चेहरेवाले की पीठ थपथपाते हुए कहा, 'मेरे उपन्यास का नया अध्याय तुम्हारे चरित्र से और होटल से शुरू होगा मिस्टर भचावत।'

मिस्टर भचावत एक अजीब शख्सियत रखता था। बॉस ने सबसे ज्यादा अहसान उसी पर किए थे, और आज इस 'गंदी होटल की अच्छी चाय' पीते हुए, वह बॉस की कठोर निंदा कर रहा था। मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगा। मजेदार बात है कि मैं खुद उनकी आलोचना कर जाता था। तब मुझे बुरा नहीं लगता था। लेकिन उसके मुँह से उनकी बुराई सुन, मुझे आश्चर्य और दु:ख हुआ। मैंने गंभीर हो कर, चाय की चुस्की लेते हुए उससे पूछा, 'क्यों यार, तुम्हारा कानून क्या कहता है। जो व्यक्ति तुम्हारी सहायता करता है, उसकी आलोचना की जाए या नहीं।'

मिस्टर भचावत को मेरे वाक्य की नोक पड़ गई। उन्होंने भजिए का कौर मुँह में डालते हुए कहा, 'देखो भाई, अपनी भूमिका साफ है। अपना बाप भी अच्छाई के साथ बहुत-सी बुराइयों का मालिक है। हम बाप की बुराइयों की यानी बाप की आलोचना अवश्य करेंगे। आखिर क्यों न करें। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बाप से प्यार नहीं करते। उसके लिए दौड़ जाएँगे। लेकिन उसकी बहुत-सी बातों को देख कर आग-बबूला भी हो जाएँगे, भले ही शाइस्तगी के नाते हम उनसे कुछ न कहें।'

मैं मुसकरा उठा। मिस्टर भचावत के पिता, जो एक दुकान पर मुनीम थे, लड़के के हाथ में तराजू पकड़वाना चाहते थे। उन्होंने अपने बेटे को तिजारत के सब गुर बता दिए थे। लेकिन लड़के ने बगावत कर दी। अपने पैरों पर खड़े हो कर राजनीति-शास्त्र में एम.ए. किया और लोवर डिविजन क्लर्क हो गया। और इस समय वह यहाँ हमारा साथी अध्यापक है।

उसकी बात समझ में आने लायक थी। लेकिन उत्सुकतावश मैंने पूछा, 'मान लीजिए कि बॉस को पता चल जाए कि तुम उस गली में बैठे-बैठे उन्हें गाली दे रहे थे।'

उसने मुझसे कहा, 'कोई मेरा दुश्मन ही वैसा करेगा।'

मैंने कहा, 'लेकिन तुम उस व्यक्ति की आलोचना करना बुरा नहीं समझते, जिसने तुम पर बहुत उपकार किए हैं?'

उसने साफ-साफ कहा, 'बिलकुल बुरा नहीं समझता। आखिर तुम्ही बतलाओ मिस्टर जगत, किसी दूसरे में जो बुराइयाँ हमें महसूस होती रहती हैं और काँटे-सी खटकती हैं उनकी आलोचना क्यों न की जाए।'

मैंने जवाब दिया, 'मनुष्यता यह कहती है कि उपकार का बदला अपकार से न दिया जाए।' भचावत ने जिद करके कहा, 'लेकिन आलोचना यदि गलत हो तो अपकार का ही एक रूप क्यों न समझा जाए।'

मैंने बात आगे बढ़ाई, 'लेकिन, बॉस तो वैसा नहीं समझता; दुनिया तो वैसा नहीं समझती; लोग तो वैसा नहीं समझते!'

भचावत ने अब जिद पकड़ ली। उसने कहा, 'देखो भाई, यह साफ-साफ बात है। यह हमारे-तुम्हारे बीच की बात है। जानते हो न कि हमारे बॉस साहब कौन हैं? इस शहर के नामी-गिरामी शैतान हैं। उनके जमाने में मजदूरों पर कितनी बार लाठी-चार्ज नहीं हुआ, या गोलियाँ नहीं चलाई गईं! रियासत के जमाने में अंगरेज पोलिटिकल एजेंट के कहने से कितने ही कांग्रेसी जेल में सड़ा दिए गए और मार डाले गए। यह सब पुराना किस्सा है। लेकिन इस किस्से का एक प्रमुख पात्र कौन है - जिसके जरिए यह सब किया जाता रहा? हमारे बॉस के जरिए!... आज भी देखो न! बगीचे में से आँवले तोड़ कर ले जानेवाले लड़कों को उस शख्स ने, जिसे दो कदम चलने में भी तकलीफ होती है, कितना नहीं पीटा! और हमारे दरबार के लोग ताकते रह गए। रिश्वत देना, रिश्वत लेना बुराई तो है न! उसका प्रयोग करते हुए कितने काम नहीं किए-कराए जाते। लेकिन चोरी, और वह भी खाने-पीने की चीजों की, जमीन-जायदाद की, उसके लेखे, जघन्य अपराध है। सामने के तालाब में फटेहाल लड़के मछली चुराने आते हैं। उन्हें किस तरह ठोंका-पीटा जाता है! क्यों? इसलिए कि वह फटेहाल हैं, एकदम गरीब हैं।

और उसके लेखे जो फटेहाल हैं उनके लड़के चोर और आवारा हो ही जाते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक ग्रंथि है! उसे उसके दिमाग का ऑपरेशन करके भी नहीं निकाल सकते। यही देखो न! मैं चाय पीने यहाँ कभी-कभी आता हूँ। मैं यहाँ इसलिए आता हूँ कि मुझे यहाँ की चाय बहुत पसंद है। लेकिन यहाँ इस गंदी होटल में ये सब लोग आ-जा रहे हैं, वे उसके लेखे कमीन हैं! और कमीन लोग गुंडे होते ही हैं - यह सब उसकी मान्यताएँ हैं! इसलिए उसने अवंतीलाल का मेरे साथ यहाँ आना बंद करवा दिया! और अब वह तुम्हारे भी पीछे पड़ा है! उसके विद्या केंद्र का व्यक्ति यहाँ आ कर चाय पीए! राम-राम! यह तो उस विद्या केंद्र की बदनामी है। लेकिन जानते हो, मैंने इस होटल का क्या नाम रखा है - 'काफे-द-मजदूर'! क्या बुरा नाम है यह! मैं मारवाड़ी का बच्चा हूँ और इन्हीं लोगों से ब्याजबट्टा करके उनकी जमीन कुर्क कराके हमने अपने घर भरे हैं - मैं साफ कहता हूँ कि इस बुरे काम में हमारा भी हाथ है। हम शैतान के बच्चे हैं! और अब इस समय मैं शैतान का नौकर हूँ। शैतान इसीलिए दूसरे पर मेहरबानी करता

है कि वह भी शैतानी के ढाँचे में फिट हो! मैं उस ढाँचे में फिट होने से इनकार कर देता हूँ!'

मैंने उसके लंबे व्याख्यान पर एक गहरी साँस लेते हुए कहा, 'लेकिन जब बॉस के सामने हो जाते हो तब तो तुम अपने को तुच्छ समझते हुए, उसे महान मान कर काम करते हो!'

मिस्टर भचावत ने निर्लज्ज हो कर जवाब दिया, 'बिला शक! मुझे वैसा करना ही चाहिए!'

मैं अवाक हो उठा, 'भई, कैसे, क्यो, किस तरह?'

वह क्षण-भर चुप रहा। फिर उसने कहा, 'कहा जाता है कि हममें व्यक्ति-स्वातंत्र्य है। लेकिन यह मान्यता झूठ है। हमें खरीदने और बेचने की, खरीदे जाने की और बेचे जाने की आजादी है! हमने अपना व्यक्ति-स्वातंत्र्य बेच दिया है, एक हद तक तो इसलिए...'

जगत झल्ला गया। उसने कहा, 'मैं इस बात से इनकार करता हूँ कि हमने अपनी स्वतंत्रता बेच दी है।'

भचावत एक अजीब हँसी हँसा, जिसे देख कर मुझे किसी अघोरपंथी साधु की याद आ गई।

उसने कहा, 'तुम क्या समझते हो और क्या नहीं समझते - इसका सवाल नहीं है! सवाल यह है कि क्या उस मजलिस में अपने दिमाग में उठनेवाले या पहले से उठे हुए खयालों को ज्यों का त्यों जाहिर करने की आजादी है!'

यह कह कर भचावत जगत की तरफ आँख गड़ा कर देखने लगा। तो मैंने इस बात का जवाब दिया, 'आखिर किसी ने आपको अपनी मन की बात कहने से रोका तो नहीं है!'

भचावत ने चाय पीने की समाप्ति का कार्यक्रम पान खाने से शुरू किया। पान खाते-खाते वह कहने लगा, 'तो तुम क्या यह सोचते हो कि अपने मन की बातें साफ-साफ कहने से आपकी नौकरी टिक जाएगी? अजी, दो दिन में लात मार कर निकाल दिए जाएँगे। जनाब यह मेरी चौदहवीं नौकरी है। ज्यादा खतरा अब मैं नहीं उठा सकता। सच कहता हूँ इसलिए बदमाश कहा जाता हूँ, क्योंकि मैं अब तक व्यक्ति, स्थिति और परिस्थिति को न देख कर बात करता था। मैं बदमाश था। अब

मैं सोच-समझ कर, अपने को भीतर छुपा कर, मौका देख करके बात करता हूँ, इसलिए लोग मुझे अच्छा समझते हैं। सवाल लिखित कानून का नहीं है। लिखित नियम तो यह है कि व्यक्ति स्वतंत्र है। किंतु वास्तविकता यह है कि व्यक्ति को खरीदने और बेचने की, खरीदे जाने और बेचे जाने की, दूसरों की स्वतंत्रता को खरीदने की या अपनी स्वतंत्रता को बेचने की आजादी है। लिखित नियम और चीज है, वास्तविकता दूसरी बात है। खाने के दाँत एक होते हैं, दिखाने के दाँत दूसरे। पूरे यथार्थ को मिला कर देखिए। मैं तो मारवाड़ी का बच्चा हूँ। आप कवि लोग हैं। सच्ची आजादी उन्हें है, जिनके पास पैसा है। वे पैसों के बल पर दूसरों की स्वतंत्रता खरीद सकते हैं... मैं खुद खरीदता था।'

मिस्टर भचावत के वक्तव्य से हमारा समाधान नहीं हुआ। अगर मैं वही बात कहता तो दूसरे ढंग से कहता। ढंग बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। सच है कि हम श्रम बेच कर पैसा कमाते हैं। लेकिन श्रम के साथ-ही-साथ, हम न केवल श्रम के घंटों में वरन उसके बाद भी अपना संघर्ष-स्वातंत्र्य, विचार-स्वातंत्र्य और लिखित अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को भी बेच देते हैं। और यदि हम अपने इस स्वातंत्र्य का प्रयोग करते-कराते हैं तो पेट पर लात मार दी जाती है। यह यथार्थ है। इस यथार्थ के नियमों को ध्यान में रख कर ही, पेट पाला जा सकता है, अपना और बाल-बच्चों का।

तो क्या भचावत सचमुच ठीक कहता है। क्या मेरी अपनी उन्नति के लिए समाज में मेरी बढ़ती के लिए मुझे भी उसी तरह पूँछ हिलानी पड़ेगी? वास्तविकता यह है कि अलग-अलग लोग अलग-अलग ढंग से पूँछ हिलाते हैं। मेरा भी पूँछ हिलाने का अपना तरीका है। मैं पहले अपने पैसे मालिक की गोद में रख दूँगा। और फिर दाँत निकाल कर मालिक के मुँह की तरफ देखते हुए पूँछ हिलाऊँगा। दूसरे कुत्ते दरवाजे में खड़े हो कर पूँछ हिलाते हैं। कुछ कुत्ते पास आने की लगन बताते हुए बीच-बीच में भौंकते हैं, गुर्राते हैं और पूँछ हिलाते रहते हैं। मतलब यह कि स्थिति-भेद और स्वभाव-भेद के अनुसार, पूँछ हिलाने की अलग-अलग शैलियाँ हैं।

तो मैं यह नहीं कह सकता कि मैं पूँछ नहीं हिलाता। लेकिन यह जरूर है कि मैं अपने मालिक के प्रति समर्पित नहीं होता - जिस प्रकार राव साहब हैं - न अपने को उनके सामने तुच्छ देखता हूँ। तो होना यह चाहिए कि साफ-साफ कहूँ। लेकिन सवाल यह है कि झगड़ा कौन मोल ले, हमें क्या मतलब, हमसे क्या काम है!

लेकिन भचावत? भचावत बदमाश है। वह यह धोखा खड़ा करना चाहता है कि वह उनका है, लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता।

और फिर भी भचावत ने जो बातें कहीं, उनमें बहुत-कुछ सार दिखाई दिया।

हम ज्यों ही पान खा कर रास्ते पर चलने लगे, मैंने भचावत से कहा, 'मिस्टर हम जरा घूमते हुए आएँगे, तुम इधर से निकल जाओ!'

उसने जवाब दिया, 'क्यों, इंटरनेशनल बात करनी है! खैर, जाओ। लेकिन वो लोग मुझे क्या कहेंगे। खैर, जाओ! मैं कह दूँगा कि वे इंटरनेशनल बात करने निकल गए हैं।'

भचावत डग बढ़ाता हुआ निकल गया, और मैं वहीं दो-चार कदम इधर-उधर हुआ। मैंने कहा, 'जगत, किधर चलें!' जगत स्तब्ध खड़ा रहा। उसने कोई जवाब नहीं दिया। मैं ताड़ गया कि वह दरबार में जल्दी हाजिर होना चाहता है जिससे कि वह फिजूल की बातचीत का विषय न बने।

भचावत जब आगे के चौराहे पर पहुँच गया होगा, तब हम बिजली के चारखंभे के पीछे धीरे-धीरे पैर बढ़ा रहे थे। मैं बहुत उदास हो गया था, दिल भारी हो उठा था। लगता था कि पैर आगे नहीं उठ रहे हैं। अगर वहीं कहीं कोई बैठने की जगह होती तो मैं अवश्य बैठ जाता। एक गमगीन सूनापन दिल में घिर रहा था; दिमाग में अँधेरे के पंख भन्ना रहे थे; भयानक व्यर्थता का भाव रह-रह कर उमड़ उठता था और अपनी असमर्थता का भान घुटनों में दर्द और दिल में कलोर पैदा करता था। और मुझे गालिब का शेर याद आया-

कोई उम्बीद बर नहीं आती

कोई सूरत नजर नहीं आती

मौत का एक दिन मुयय्यन है

नींद क्यों रात भर नहीं आती

अपने बचपन और नौजवानी में ऐसे ही किन्हीं क्षणों में मुझे मृत्यु के अँधेरे में चिरकाल के लिए समा जाने की इच्छा होती थी। लेकिन अब मैं इस प्रकार के कल्पना-विकास की सुविधा भी नहीं उठा सकता। मुझे इन जलते रेगिस्तानों पर पैर रखते हुए ही चलना है।

...लेकिन मुझे अब आगे चलना भी दूभर हो गया। सामने अँधेरे में एक सिंधी की चाय की दुकान पड़ती थी। उसके भीतर कमरे में एकांत था। उस एकांत के लिए मैं तड़प उठा। एकांत मेरा रक्षक है। वह मुझे प्राण देता है, और बहते हुए खून को अपने फावे से

पोंछ देता है। जगत मेरी इच्छा समझ गया। अँधेरे-भरे एकांत कमरे में, जिसके ऊपर एक रोशनदान से धुँधला प्रकाश आ रहा था, हम दोनों जा कर धप से बैठ गए। और लगभग दस मिनट तक चुपचाप बैठे रहे। पानी पिया और उसके बाद एक-एक कप चाय।

मैंने जगत से कहा, 'हम कितने अकेले हैं! जीवन में कहीं कोई मीनिंग, कोई अर्थ चाहते हैं, और वह भी मिल नहीं पाता।'

जगत ने अंगरेजी में कहा, 'यह इसलिए है कि हममें संकल्प-शक्ति नहीं है। अगर हम इन्हें धुतकार दें तो ये हमारा क्या कर लेंगे।'

मैं पल-भर चुप रहा। फिर कहा, 'धुतकारना आसान है। मेरी भी यह पंद्रहवीं नौकरी है। लेकिन पेट पालना बहुत मुश्किल है। मेरे घर में सारे दुर्भाग्य मौजूद हैं - लंबे-लंबे रोग, भारी कर्ज, कलह और मानसिक अशांति, ये बीसियों साल से घर किए बैठे हैं, उन्होंने मुझे ही चुना है। बाल-बच्चों को सड़क पर फेंक कर, भले ही मैं कुछ कर जाऊँ। लेकिन मैं इतना कठोर नहीं हो पाता, कोई भी नहीं हो सकता!...' मैंने जगत से कहा, 'हमें अपने वर्ग में रहने का मोह है, निचले वर्ग में जाने से डर लगता है। लेकिन क्रमश: हमारी स्थिति गिरते-गिरते उन जैसी ही होती जाती है तो वहाँ सहर्ष ही क्यों न पहुँच जाएँ! लेकिन वहाँ भी मुक्ति नहीं है, क्योंकि उस स्थान पर भी घोरतर उत्पीड़न है।'

'और फासले? कितने फासले हैं, हमारे और तुम्हारे बीच में। तुम्हारे और भचावत के बीच में, भचावत के और किसी के बीच में, ये दिल मिलने नहीं देते।'

और ठीक इसी क्षण जगत न मालूम किस स्फूर्ति से चल-विचल हो गया। वह बीच में कूद पड़ा। उसने मेरे आत्मनिवेदन में हस्तक्षेप किया और कहने लगा, 'अमरीकी लेखकों ने भी इसी तरह की परिस्थितियों का सामना किया है। यह कोई नई परिस्थिति नहीं है।'

मैं सिर्फ हँस दिया, यद्यपि जगत की बात में सार-तत्व था।

और, फिर हम मशीन की भाँति वहाँ से उठ खड़े हुए। निश्चय-अस्पष्ट और अधूरा - मेरे दिमाग में चल-विचल होने लगा।

मैंने मुँह लटका कर रास्ते में जगत से कहा, 'आदमी-आदमी के बीच के फासले दूर कैसे होंगे?'

जगत ने एक गहरी साँस ली। उसने कहा, 'इनको बातचीत से दूर नहीं किया जा सकता, क्योंकि वहाँ तरह-तरह के भेदों की दलदल है।'

तब मैंने मानो जोर से चीख कर कहा, 'हाँ, हमें इस दलदल को सुखाना होगा। लेकिन उसके लिए तो किसी ज्वालामुखी की ही आग चाहिए।'

बातचीत और भी थकाए डाल रही थी, एक अबूझा दर्द भर रहा था। लगता था कि हम किसी अँधेरी सुरंग में भटकते-भटकते अब यहाँ पहुँच कर एक दीवार का सामना कर रहे हैं जिसके आगे रास्ता नहीं है।

ज्यों ही हम बगीचे में वापस पहुँचे, हमें दूर से दिखाई दिया कि दरबार लगा हुआ है। एक गहरी झेंप हमारे चेहरे पर छाने का प्रयत्न करने लगी। केंद्र में हमारे बॉस बैठे हुए थे।

बॉस एक ठिगने कद के और चौरस पीठ के व्यक्ति थे जिनके चेहरे पर तिकोनापन था। एक छोटी संवेदनशील नाक थी और छोटी ठुड्डी! आँखे बड़ी-बड़ी और गोल थीं। एक क्षण-भर में वे क्रोध में उत्तेजित हो सकते थे और दूसरे ही क्षण ठंडे हो कर मुसकरा कर कोई मजेदार किस्सा सुना सकते थे। उन्हें देख कर मेरे हृदय में अनायास प्यार उमड़ता। उनके व्यक्तित्व में एक चमत्कार अवश्य था। वैसे वह बहुत बुलंद आदमी थे और किसी के आगे झुकना उनसे न हो पाता, यद्यपि किसी भावावेश में आ कर वे नम्र हृदय भी हो सकते थे! इस समय उनके चेहरे पर एक मुसकराता प्रेम-भाव और आँखों में आर्द्र तल्लीन दृष्टि थी, जो यह बताती थी कि उनसे सुकुमार काँपते चित्र उत्तेजित हो कर नए-नए कोमल भाव तरंगित करते रहते हैं।

उसके पास श्री भचावत बैठे हुए थे। ऐसा लगता था कि उन्होंने अपना बोलना अभी बंद कर दिया है और उनके मस्तिष्क में अभी भी वाक्य-चित्र उभरते जा रहे हैं। जब ऐसा होता है तब ये साधारणतः अपनी एक जाँघ पर दूसरा पैर रख कर, धड़ को आगे करके किसी उत्तेजित, गंभीर, भाव-प्रवण मुद्रा के सामने झुके हुए दिखाई देते हैं। इस समय की उनकी मुद्रा भी उसी प्रकार की है।

उनके पास अपने को अस्तित्वहीन बना कर, नि:शेष बना कर, एक नामहीन छाया बैठी हुई है, जो इतनी पीली है कि ऐसा लगता है, मरघट में से, चिता पर से अभी उठ कर चली आई है। ये सज्जन गणित-शास्त्री हैं। उनके बगल में एक महोदय बैठे हुए हैं, जिनकी बैल की-सी मोटी गरदन पर एक नीला रूमाल लिपटा हुआ है। ये महोदय ठिगने और चौड़े तो हैं ही, उनके चेहरे पर जड़ी हुई आँखे बहुत बारीक हैं और एक आँख

कानी है। उनके माथे का ढाल ऊपर से नीचे की जोर जा रहा है। माथा एकदम छोटा, तंग है; उसकी चौड़ाई तीन अंगुल से शायद ही बड़ी हो। सिर लगभग चपटा है और पीछे की तरफ एकदम समाप्त होता है, जिससे यह लगता है कि गरदन ही सिर पर चढ़ गई है। चेहरा खूब भरा हुआ गोल और छोटा है। नाक छोटी, तीखी और संवेदनशील है और छोटे-छोटे होठ हैं। कुल मिला कर, लोग उनकी तरफ एमदम आकर्षित होते हैं, किंतु उन पर उस व्यक्तित्व का प्रभाव बुरा पड़ता है।

इस समय उनके मुँह में चॉकलेट की गोलियाँ भरी हुई हैं - जेब में तो वे उन्हें हमेशा रखते ही हैं। उनके पास, कुरसी पर एकदम दुर्बलकाय ऊँची लड़की बैठी हुई है, जिसके लंबे चेहरे पर चश्मा लगा हुआ है। सारा चेहरा चार लंबी सलवटों में बाँटा जा सकता है और वह ऐसा बिगड़ा हुआ-सा लगता है मानो उन्होंने कोई निहायत कड़ुई दवा अभी-अभी खाई हो और उसकी डकार ऊपर आ रही हो और आ न पाती हो। वे रसायनशास्त्री हैं। उनके बगल में एक भीमकाय व्यक्ति बैठे हुए हैं जिनकी पीठ कम से कम ढाई फुट ऊँची होगी और खूब चौड़ी। वे जब हँसते हैं तो ऐसा लगता है कि प्रतिध्वनि की लहरों से कहीं दरख्त ही न टूट जाएँ। उनका चेहरा ऐसा भूरा-सफेद है जैसे बाल का पुट्ठा हो। वह ऊपर से गोल, मांसल और पुष्ट हैं, नीचे से एकदम तिकोना! वे भी चश्मा पहने हुए हैं और ऐसा लगता है जैसे वे हर चीज को घूर कर देख रहे हों। वे भूरी नेहरू जैकेट पहने हुए हैं, और इस समय हाथ में रखे अपने डंडे को हिला-डुला रहे हैं। वे संस्कृति के विद्या-वारिधि हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति पर एक शोध-ग्रंथ भी लिखा है। वे यहाँ काफी प्रतिष्ठित माने जाते हैं। सिर्फ मिस्टर भचावत उन्हें छेड़ते रहते हैं।

उनके बगल में कुरसी पर दो दुबले-पतले सज्जन सिमटे-सिमटे बैठे हैं मानो उन्हें यह नज्जारा भयभीत कर रहा हो! दोनों सूट-बूट से लैस हैं और लगता है कि उनमें से हर एक का सूट कम से कम ढाई सौ रुपयों का तो होगा ही। उनमें से एक नेकटाई लाल और दूसरे की नीली है और सिर्फ इस डर में हैं कि कहीं उनके संबंध में चर्चा न छिड़ जाए। उनके बगल में, बड़ी ही गौरव-भावना और शालीनता के साथ कंजी आँखोंवाला एक गोरा नवयुवक बैठा हुआ है, जिसके बारे में कहा जाता है कि कॉलेज के जमाने में उस पर कई लड़कियाँ मरती थीं। वह इस समय सादे पोशाक में अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व में खोया हुआ है। मुसकरा रहा है। वे दर्शनशास्त्र हैं। उनके पास कुरसी के एक हिस्से पर झुक कर और तिरछे हो कर राव साहब बैठे हुए हैं, जिनके मुखमंडल पर श्रम की थकान के साथ-ही-साथ संतोष की निस्तब्धता भी विराजमान है। उनके बाजू में चार-पाँच कुरसियाँ खाली पड़ी हैं।

इस पर मंडली पर मौलसिरी के ऊँचे-पूरे, भरे-भरे वृक्षों का सघन छाया-प्रकाश गिर रहा है।

हमने बॉस को नमस्कार किया और चुपचाप अपनी कुरसियों पर जा कर बैठ गए। तीन-चार मिनट में हमने नए वातावरण से अपने-आपको जमा लिया और अपेक्षा भाव से चारों ओर देखने लग गए। किंतु, वातावरण पूर्ण प्रशांत था। और मुझे समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों है।

इतने में राव साहब के पास बैठे हुए चमकदार दर्शनशास्त्र ने कहा, 'साहब, पैरासायकॉलॉजी में यही पढ़ाया जाता है।'

मैं समझ चुका कि बात पहले हो चुकी है। इसलिए चुप रहा कि संस्कृत के विद्यावारिधि महोदय अपनी गड़गड़ाती आवाज में पैरासायकॉलॉजी का एक पुराना उदाहरण बताने लगे, जो उन्हें किसी जगह पढ़ने को मिला था। असल में वह पिशाच-बोध का उदाहरण था। लोगों ने उनकी कहानी का अच्छा-खासा रस लिया, साथ ही उनके व्यक्तित्व का भी। पता नहीं कैसे, उनकी कहानी के सिलसिले में ही अपराधों की चर्चा चल पड़ी, जो 'ब्लिट्ज' नामक पत्र में निकला करती थी। अपराधों पर से होती हुई वह धारा महाराजा तुकोजीराव होल कर तक गई और वहाँ से बहती हुई वेश्याओं तक आई। फिर संस्कृत के विद्यावारिधि ने गणिका और वेश्या का भेद बताया और फिर उन शहरों पर चर्चा चल पड़ी, जहाँ वेश्याओं के प्रसिद्ध मुहल्ले हैं। फिर उन शहरों की अन्य विशेषताओं पर दृष्टि जाते ही युनिवर्सिटियों के प्रशासन पर चर्चा चल पड़ी और फिर विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता की घाटी में से बहती हुई वह धारा राजनीतिज्ञों पर गई और वहाँ से बहती हुई चुनाव तक आ पहुँची, बंबई के चुनाव तक!

कृष्णमेनन के चेहरे पर भी चर्चा चली और वहाँ से वह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का किनारा छूती हुई, राजनीतिज्ञों द्वारा दी जानेवाली पार्टियों तक पहुँची। और उन पार्टियों से बहती हुई वह शराब की किस्मों तक आई, और फिर वहाँ वहाँ से अंगरेजों के खान-पान से होती हुई वह महा-राष्ट्रीय 'वरण' और 'पूरणपोड़ी' तक पहुँची और फिर वहाँ से एक विस्फोट की भाँति मोटी गरदनवाले अर्थशास्त्री से प्रश्न पूछा गया, **(**पूछनेवाले स्वयं बॉस थे**) -** 'बताओ तुम कितने रसगुल्ले खा सकते हो?'

मिस्टर राजभोज ने कहा, **'**यही लगभग दो सेर।**'**

बॉस ने कहा, **'**तीन सेर खाओगे**?'**

राजभोज ने कहा, 'नहीं, इतना नहीं खा सकते!'

'अच्छा, तुम्हें पाँच रुपए दूँगा, अगर तुम इतना खा जाओ तो!'

'नहीं सा'ब, इतनी कम कीमत में इतनी तकलीफ नहीं उठाई जा सकती।'

'अच्छा, दस रुपए दूँगा।'

मोटी गरदनवाले महोदय एकदम उठ खड़े हुए और कहने लगे, 'एकदम तैयार हूँ; इतनी मिठाई तो मैं बचपन में खा जाता था।' और ठहाका मार कर हँसने लगे।

मिस्टर राजभोज के लिए तीन सेर, हम सब लोगों के लिए दो सेर मिठाई का आर्डर दिया गया।

यद्यपि लोग उकताए हुए थे (क्योंकि इसी तरह की बातें जरा-से उलट-फेर के साथ रोज चलती थीं,) पर मिठाई की प्रतीक्षा में बैठे रहे और उठ पड़ने के जबरदस्त मोह को दबा गए।

कि इतने में...

दूर से, एक चमकदार आदमी और उसके साथ दी-तीन आदमी और जाते दिखाई दिए। वे अभी बोगनविला से लदे फाटक के पास ही थे। चमकदार आदमी काला महीन ऊनी पैंट और सफेद बुशकोट पहना हुआ ऊँचा गोरा-चिट्टा व्यक्ति था। उसका चेहरा लंबा था, जिस पर कुलीन आभिजात्य की आभा फैली हुई थी, जो उसकी आत्म-विश्वासपूर्ण चाल ढाल, मजाक-भरी मुस्कराहट और उँगलियों में फाँसी सिगरेट की राख झिड़कने की तरकीबों से प्रकट हो रही थी। काली फ्रेम के चश्मे के ऊपर, दो-चार रेखाओंवाले माथे के नीचे घनी-घनी भौंहें थीं और कान के ऊपर दो-चार लंबे बाल ऊँचे उठे थे। वह इस तरह चल रहा था, जैसे यहाँ का सारा इलाका उसी का है।

वह लंबी आसान डगें उठाता हुआ चला आ रहा था। उसके पीछे एक छोटे कद का, गोरे रंग का पचास-साला आदमी चल रहा था, जिसके आगे के दाँत टूटे हुए थे। उसका छोटा लंबा चेहरा पान की पीक से भरा था। वह खद्दर की पोशाक से लैस यहाँ का कांग्रेसी लगता था। उसकी चाल-ढाल ऐसी थी कि लोगों को यह भय था कि कहीं फिर से यहाँ का चुनाव न हो। उसके पीछे एक लंबा काला पहाड़ी कद का आदमी चल रहा था, जिसका हर अंग सुडौल, मजबूत और भरा-पूरा था। उसके चेहरे पर चिकेन पत्थर की कठोर निस्तब्धता थी। साथ ही, उसका मुखमंडल चमचमा रहा था, यद्यपि वह

मुँह पर तेल नहीं लगाता था लेकिन चेहरा तेलिया दीखता था। वह पैंट और बुशकोट पहने हुए था। उसकी पोशाक गंदी थी। वह ईसाई मोटर-ड्राइवर था। नए आगंतुकों को देख कर, हममें से कुछ लोग बेचैन होने लगे, कुछ अपनी सीट छोड़ कर बेचैन होना चाहने लगे।

मोटी गरदन ने इधर-उधर ताकना शुरू किया। मैं सबसे पहले उठ कर मीटिंग भंग करने की चहलकदमी करते हुए एक पेड़ की छाया में चहलकदमी करने लगा। धीरे-धीरे इधर-उधर देख कर किसी-न-किसी गुंताड़े या बहाने से लोगों ने उठना शुरू किया।

मेरे पास जगत भचावत और राव साहब आ कर खड़े हो गए। राव साहब की चाँदी की डिबिया खुल गई। पान की लूट मची। हर आदमी ने दो-दो गिल्लौरियाँ मुँह में जमाईं - यहाँ तक कि जगत ने भी। डिब्बा खाली होते देख हम सब प्रसन्न हो कर हँसने लगे।

मुझे राव साहब का लाड़ आ गया। मैंने उन्हें एकाएक छाती से चिपका लिया और उनके सामने उनका दिया एक रुपया वापस करते हुए कहा, 'भचावत ने चाय पिला दी थी। मेरे पास भी चिल्लर थी। यह लीजिए, आपका एक रुपया वापस।'

'रखो न भई, रखो न भई। अभी तो बहुत जरूरत पड़ेगी।'

मिस्टर भचावत ने उद्दंडतापूर्वक उसे छीनना चाहा और कहा, 'समझते नहीं हो। अभी तो भोजन भी नहीं हुआ है। उस समय साढ़े बारह बजे हैं। महफिल चलेगी रात के कम से कम दस बजे तक। रुपया तो अपने को लगेगा। घूमने-घामने के लिए।'

राव साहब पान चबाते हुए प्रेमपूर्वक भचावत के चिबल्लेपन को देख रहे थे। उसकी नोक उन्हें कई बार गड़ चुकी थी। लेकिन वे अब उसका आनंद भी लेते थे।

असल चीज यह है कि मिस्टर भचावत लोगों के ऐब देखने में बहुत होशियार हैं। अगर सिर्फ ऐबों को देखते तब भी कोई बात नहीं थी, वे उन कमजोरियों को अपनी क्रीड़ा-व्यवहार का विषय बनाते। यह बड़ी खतरनाक बात थी। ऐसे लोग दुश्मन पैदा कर लेते हैं। और अगर यहाँ उनके शत्रु नहीं हुए तो इसका कारण यही था कि यहाँ के लोग अत्यंत सदाशय थे और किसी की चार बातें सह लेना जानते थे।

भचावत ने बताया, 'यह जो बॉस के पास बैठे हुए सुनहरे और ऊँचे पूरे व्यक्ति हैं, जो बुशकोट पहने हुए हैं और बड़ी अदाओ अंदाज के साथ सिगरेट पी रहे हैं वे यहाँ के एक रईस हैं। अपने शहर के पास के जमींदार (विधवा स्त्री है वह) के दीवान के वे लड़के हैं।

उनकी अपनी कोई कमाई नहीं, उनकी अपनी कोई मेहनत नही हैं। उन्होंने सिर्फ विधवा जमींदारिन के साथ मेहनत की है, (हम सब लोग हँसते हैं) उसी का शुभ परिणाम वे भोग रहे हैं। शहर में पूछ लीजिए, उनके अपने घरवालों से पूछ लीजिए, वे सब यही कहानी बताएँगे, क्यों राव साहब?'

राव साहब को काटो तो खून नहीं। वे स्तब्ध हो उठे। और कुछ नहीं बोले। भचावत आगे कहता गया, 'यहाँ के रईसों को बिगाड़ने और धूल में मिला देने का कार्यक्रम उन्होंने सफल करके दिखाया। कई रईस उनकी सुहवत में प्रसिद्ध शराबी और रंडीबाज हो कर चौपट गए! अब तो अपने बॉस के साथ बिजनेस करना चाह रहे हैं। हर तीसरे साल अपनी कार बदलते हैं और हर दूसरे साल अपनी प्रेमिका।'

रावसाहब ने खँखारने की, गला साफ करने की चेष्टा की। नाक में से स्वर का एक विस्फोट किया; और कहा, 'अपने बॉस उनके चक्कर में नहीं आ सकते।'

भचावत ने कहा, 'लेकिन, बिजनेस तो कर ही रहे हैं!'

राव साहब बोले, 'वो बॉस के सामने टिक नहीं सकते। बिजनेस है।'

मुझे इस बातचीत से वितृष्णा हो उठी। मुझे बिजनेस नहीं दीखता था, वरन मानव-समुदाय दीखते थे जो विशेष-विशेष स्वार्थों और हितों की दिशा में कार्यशील थे। मुझे मानव-समुदायों के खास व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व, उनके परस्पर संबंध और उनकी जीवन-प्रणाली दीखती थी। मेरे मन में उत्पन्न वितृष्णाजनक जीवन-चित्रों से मुक्ति पाने के लिए मैं वहाँ से हट गया, और दूर फव्वारे की तरफ देखने लगा, जिसके कुंड में सिर्फ गीली मिट्टी और सड़ा हुआ पानी था, जिसके भीतर गई सीढ़ियों पर हाँफते हुए मेढक अपनी भद्दी, खुली-खुली, चमकीली बटननुमा आँखों से दुनिया को देखते थे। मैंने कई बार कहा था कि इस फव्वारे को भी चालू कर दिया जाए और उसकी टोंटी सुधार दी जाए, और कुंड साफ किया जाए, लेकिन किसी ने मेरी बात नहीं सुनी।

फव्वारे के कुंड से हट कर खुशनुमा मेहराब पर चढ़ी गुलाब की बेल के नीचे से गुजरता हुआ मैं बुड्ढे युकलिप्टस के उस पेड़ की ओर जाने लगा जिसका तना - सिर्फ तना - आम के दरख्तों से ऊपर निकल आया था और जिसकी शाखाएँ आकाशोन्मुख होती हुई फैल गई थीं। वहीं हरी चंपा (मदनमस्त) के छोटे पेड़ थे, जिनकी घनी टहनियाँ प्रसन्न और शांत दिखाई दे रही थीं।

इस आशा से कि मैं उसका एकाध फूल तोड़ सकूँगा, वहाँ पहुँचा ही था कि उस पेड़ के पीछे से टेरीलीन का पैंट और बुशकोट पहने गठियल, ठिंगने, कंजी आँखवाले दर्शनशास्त्री का चमकीला चेहरा सामने आया जिस पर उदासी और उकताहट की मटमैली आभा फैली हुई थी। मुझे देख कर, अपने शरीर को ढील दे कर वे एक पैर पर जोर दे कर खड़े हो गए और चिंताशील आँखों से मुझे देखने लगे।

मैंने उनसे हाथ मिलाया। और उस हाथ मिलाने में ही मुझे मालूम हो गया कि पल-भर के लिए ही क्यों न सही, दिल मिल गया है। मैं क्षण-भर के लिए उन उदास, शिथिल, कंजी आँखों के कत्थई सितारे देखने लगा कि इतने में उसने अंगरेजी में कहा, 'मान लीजिए कि यहाँ एक हत्या हो गई है।'

चौंकते हुए मैंने जवाब दिया, 'कितना बुरा विचार है।'

उसने कहा, 'लेकिन कितना मौजूँ है।'

हम तो सा'ब, खयालों की मौजूनियत देखते हैं।'

मैं मुसकरा उठा। किसी की हत्या को या न हो, हमारी तो हो ही रही थी। यह साफ था। और मुझे देवकीनंदन खत्री के उस तिलिस्म की याद आई, जिसमें से बाहर निकलना असंभव था, लेकिन जिसके भीतर के प्रांगणों में बगीचे भी थे, तहखाने भी थे और जिसमें कई नवयुवतियाँ और किशोरियाँ गिरफ्तार रहती थीं। वे घूम-फिर सकती थीं, तिलिस्मी पेड़ों के फल खा सकती थीं, लेकिन अपनी हद के बाहर नहीं निकल सकती थीं। ये हदें वो दीवारें थीं जो पहले से ही बनी हुई थीं और जिनको तोड़ पाना लगभग असंभव था अथवा जिन्हें तोड़ने के लिए अपरिसीम साहस, कष्ट सहन करने की अपार शक्ति और धैर्य तथा वीरता के अतिरिक्त, विशेष कार्यकौशल और गहरे चातुर्य की जरूरत थी। मेरी आँखों में उस गहरे अँधेरे तिलिस्म के तहखानों और कोठरियों के बाहर के मैदानों में घूमती हुई लाल-पीली और नीली साड़ियाँ अभी भी दीख रही हैं। उनके मुरझाए, गोरे कपोल और ढीली बँधी वेणियों की लहराती लटें अभी भी दिख रही हैं और मन-ही-मन मैं कल्पना कर रहा हूँ कि क्या यहाँ फँसे हुए बहुत-से लोगों की आत्माएँ इसी प्रकार की तो नहीं हो गई हैं।... लेकिन, प्रश्न तो यह है कि इस तिलिस्म को कैसे तोड़ा जाए!

मुझे अपने में खोया जान दर्शनशास्त्री ने पूछा, 'कहाँ गुम हो गए थे? लो, यह फूल लो।'

मदनमस्त का फूल सचमुच खूब महक रहा था। लेकिन उसकी मीठी-मीठी महक दिल की राख पर फैल तो गई लेकिन जहरीली हो गई और उस जहर को मैं धीरे-धीरे सूँघता रहा।

दर्शनशास्त्री मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया और मेरा हाथ पकड़ बगीचे की उस मुँडेर की ओर जाने लगा जहाँ हमारे मकानों के पिछवाड़े में लगे हुए केलेंडर के लंबे-लंबे चमकदार हरे पत्तोंवाले झाड़ झूल रहे थे। उसने मुझे अपने विश्वास में लेते हुए कहा, 'सुनो, मैं जल्दी ही यहाँ से चला जाऊँगा।'

'सचमुच**?'**

'हाँ।'

मैं एकदम चुप हो गया। अपने अकेलेपन का दु:ख मुझे गड़ उठा। मुझे अभी से उस स्थिति की याद आने लगी जब वह चला जाएगा और मैं नि:संग रह जाऊँगा। **(**यद्यपि मैं उसके साथ के बावजूद अकेला था।**)**

मैंने दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रा से कहा, 'तुम जवान हो, तुम्हें तो जिंदगी में जरूर साहस करना चाहिए। और नई तलाश में जाना चाहिए। लेकिन... मैं? मैं कहाँ जाऊँगा। मेरे सात बच्चे हैं और माता-पिता की भी जिम्मेदारियाँ हैं। रोग, कर्ज और तरह-तरह की उलझने मुझ पर हैं।'

और मैं उसाँस ले कर चुप हो गया।

दर्शनशास्त्री कुछ नहीं बोला। वह मेरे घर की हालत जानता था। और मेरे सामने अब यह सवाल था कि मैं कहीं अगले संघर्षों में टूट तो नहीं जाऊँगा। क्योंकि अब मेरा शरीर भी साथ नहीं देता। तो क्या अब मैं यहीं बैठा रहूँ?

और, मेरे सामने यथार्थ के काले भयानक अँधेरे-भरे चित्र आने लगे, मुझे वह आदमी याद आने लगा, जो परदेश में सालों से बीमार रहा आया, लेकिन अपने स्नेहियों से सिर्फ अपनी लाश उठवाने के लिए, अंतिम क्षण में उनके स्पर्श के लिए तरसता हुआ वह देश आ गया और फिर उसी कुट्ठरवास के दो दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। मैं आज से दस साल पहले अपने दफ्तर जाते वक्त उस रास्ते से गुजरता जिस पर उस मिट्टी के अँधेरे कुट्ठर का दरवाजा खुलता था और मेरी आँखे उस व्यक्ति की ओर आकर्षित हो चुकी थीं क्योंकि वह एकदम पीला पड़ गया था और पाँव पसारे हाथ के बल चलता था। कहीं ऐसी दशा मेरी भी न हो! हाय!

कि इतने में किसी पेड़ से एक पत्ता टूट कर मेरे शरीर पर गिरा। मैंने अनजाने ही उसे उठा कर देखा और उसके घने हरे रंग में टहलती हुई नसों को देखने लगा। उसमें जवानी थी। नया रक्त था। मुझे उस पत्ते को चूमने की और अपने गालों पर उसे लगा लेने की तबीयत हुई गोकि संकोचवश मैंने वैसा नहीं किया।

इतने में, जगत पीछे से दौड़ता हुआ आया और उसने हाँफते हुए समाचार दिया, 'रूस ने एक और आदमी आसमान में छोड़ दिया। टिटोव। वह अब तक अठारह बार प्रदक्षिणा कर चुका है।'

दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रा और जगत की होड़ लगा करती थी। मिश्रा ने पूछा, 'तुम्हें तो बहुत बुरा लगा होगा, जगत! साला रूस क्यों आसमान में पहुँच रहा है। उसे तो नष्ट होना चाहिए था!'

मिश्रा ने जगत पर 'भद्दा अटैक' किया था। मैं क्या कर सकता था। जगत चुप रहा। मिश्रा कहता गया, 'लुमुंबा की कविता जगत ने नहीं पढ़ी, पढ़ नहीं सका; उसके दोस्तों के विरुद्ध जाती थी। लोग कम्युनिस्टों को गालियाँ देते है कि वे रूस चीन की ओर देखते हैं। लेकिन ये साले न सिर्फ ब्रिटेन अमेरिका की तरफ देखते हैं, उनके बैंकों में अपने रुपए रखते हैं। क्यों बे साले, ऑक्सफोर्ड या हावर्ड जा रहा था न! तेरे पास इतना फॉरेन एक्सचेंज कहाँ से आया। तेरा अंतरराष्ट्रीय पूँजीवाद यहाँ से ले कर तो अमेरिका तक एक जंजीर में बाँधे हुए हैं, पैसों की जंजीर से!'

बेचारा जगत! भूला-भटका जगत! आज गुस्से से लाल हो उठा। उसे महसूस हुआ कि उस पर झूठा आरोप लगाया जा रहा है। वह तो अमरीकी साहित्य का प्रेमी है!

अकस्मात जगत ने मिश्रा पर बुरी तरह 'अटैक' कर दिया था। पीछे से उसकी मोटी कमर पकड़ कर उसके संतुलन को बिगाड़ते हुए उसे नीचे गिरा दिया कि इतने में मिश्रा ने उसे अपने आलिंगन में जकड़ लिया, इतनी जोर से उसे कसा और इतनी जोर से हँस पड़ा कि जगत हक्का-पक्का रह गया।

मिश्रा ने कहा, 'हमारे-तुम्हारे बीच कोई झगड़ा नहीं है, जगत! तुम्हारा-हमारा प्राकृतिक सह-अस्तित्व है क्योंकि हम दोनों एबीलार्ड्स हैं।'

एबीलार्ड! दिमाग में एक बिजली कौंध उठी। एकाएक मुझ पर वज्र-सा गिर पड़ा।

एबीलार्ड! संत! जिसने अपनी जननेंद्रिय को चाकू से काट दिया था। संत बने रहने के लिए।

—— X ——